स्त्री के रूप

लक्ष्मण 'सौमित्र'

सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बीकानेर

लक्ष्मण 'सौमित्र'

प्रकाशक
सूद प्रकाशन मंदिर
बिस्सा का चौक
बीकानेर

मूल्य तीन रुपये

प्रथम संस्करण
१९६७

पृष्ठ संख्या ८+११०==११६

मुद्रक
पवन आर्ट प्रेस
बीकानेर

STREE KE ROOP : A Short Story Collection by
Laxman Saumitra Price 3.00

स्त्री के रूप

—, रानी, ऊषा और को ।

प्रस्तावना

मुझे कुछ ऐसा लग रहा है, जैसे शहर की जिन्दगी एकाएक ही वाष्प होकर किसी एकादश खण्डी पारदर्शी कीप के माध्यम से बहनी आरम्भ हो गई है। साड़िया, लैवेण्टर, लिपिस्टिक, रूज, वैनिटी बैग और धूपिया चश्मे– ये जैसे रूप हीन होकर उस एकादश खण्डी साँचे में ढल गये हैं। कोई भी व्यक्ति यदि शहर का है, रूमान और यथार्थ की जिन्दगी से जिसका तनिक भी परिचय है, प्रेम और वासना को जिसने देखा अथवा भोगा है, वह इनकी लपट और इनके अभिषेक से बचकर नहीं जा सकता। लक्ष्मण का कहानीकार यथार्थ की ऐसी ही सत्याग्रही स्थिति का मुखापेक्षी है। राधा, मार्था, सरला, निशा और रीता—ये कुछ ऐसी इकाइयां हैं जिनसे आपका प्रणय और रोमांस जीवित है, जीवैषणा उजागर है, और कुण्ठा मूर्तिमान! मिर्जा इस्माइल रोड, कुतुब, ओरियन्टल, गेलार्ड, नीरोज और विश्वविद्यालय की चौहद्दी—इनमें यदि कहीं भी कोई विशिष्ट भाव भंगिमा वाली, अति साधारण या असाधारण, मुखर, वाचाल अथवा आभिजात्य कोई संज्ञा गतिमान लगे तो आप पाएँगे कि आप लक्ष्मण सौमित्र के माध्यम से उनसे परिचित हो रहे हैं।

कहानी जीवन से न तो कटी है, न जीवन कहानी से। और जो लोग आज तक कला के नाम पर प्रकारान्तर से इन्हें ऐसा मानते रहे हैं, लक्ष्मण सौमित्र उनके लिये एक 'आतंक क्षेत्र' का काम करते हैं। प्रस्तुत संग्रह की ग्यारहों कहानियां पढ़ने

से यही लगता है जैसे रोमास, वासना, कुंठा और प्रेम इन सबका अपना एक अलग विश्व है, उस विश्व की सीमा मे एक बार पदक्षेपण करने के बाद हमे लगता है जैसे हमे एकाएक ही एक स्टाप से दूसरे स्टाप तक जाती हुई किसी एसी ट्राम म चढा दिया गया हो, जिसमे कहीं रुकावट नहीं है। किसी प्रवाह मे डाल दी गई नाव की भाति जब तक तट न मिले तब तक हम सौमित्र के कथा शिल्प के साथ बहना होगा।

मैं लक्ष्मण सौमित्र की तुलना किसी फ्रेन्च, अमरीकी अथवा रूसी कथाकार से करके उसकी अपनी मौलिकता को सीमित नहीं करना चाहता, क्योंकि उनके लिये यथार्थ केवल कहानी का यथार्थ न होकर जीवन का यथार्थ है। एक ऐसा यथार्थ जिसको मन और हृदय, धड़कन और मास, रक्त और मास के सूक्ष्मतम तन्तुओं से बुना गया है। और इस आधार पर वे हिन्दी के किसी भी कथाकार से लोहा ले सकते हैं।

इस कथा सग्रह का चुनाव कदाचित लक्ष्मण सौमित्र की उन शताधिक कहानियों मे से हुआ है, जो उन्होंने पिछले १०-१२ वर्षों म लिखी हैं तथा इनमे से चुनी गई ये कहानिया स्त्री के नाना रूपों और बहुमुखी चरित्र को अत्यन्त ही सजीदगी के साथ हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती हैं। कहानी के क्षेत्र म लक्ष्मण सौमित्र का स्थान ऐसे निस्पृह, अनासक्त और तटस्थ कलाकार के रूप में है, जो पुरानी अथवा अर्वाचीन जीवित रहने वाले शिविरों-दलबन्दियों की नियोजी नजर से ऊपर है।

मैं उनके इस प्रथम प्रकाशित किन्तु फिर भी अत्यधिक प्रत्याशी (Prospective) कथा सग्रह का स्वागत करता हूँ।

—प्रकाश पण्डित

एक

कल की डाक से एक लिफाफा आया है बिना चिट्ठी का। लिफाफे के अन्दर किसी भी चिट्ठी से अधिक मन को उकसा देने वाले मेरे दो चित्र हैं—मेरे अपने ही जिन्हें मैं कल शाम ही से देख रहा हूं। कितना कुछ है इन चित्रों के अन्दर। सबका सब जीवन्त इतिहास हो जैसे। कल शाम से अब तक की दुपहरिया के इन अठारह घण्टों की इतनी लम्बी अवधि में मैंने सिर्फ एक ही बात सोची है—एक ही बात को रात के आठ घण्टे की उनींदी नींद के सपनों में देखा है। और बस इन चित्रों के वापस लौट आने का मतलब समझने का प्रयत्न भर किया है उल्टे सीधे ढेर सारे अर्थ लगा लगा कर, सन्दर्भ जोड़ जोड़ कर। आज मेरे अपने चित्र ही मुझसे घण्टों बात करते रहे हैं पता नहीं क्या क्या मुझे समझाते रहे हैं। पिछले अठारह घण्टों में एक क्षण के लिए भी चुप नहीं रहे हैं। इन चित्रों से सम्बन्धित सारे फ्लैशबैक एकदम साफ सुथरे होकर मेरी आंखों के सामने आए हैं—एक शृंखलाबद्ध कहानी बन कर, जो किसी उजले दिन की रोशनी की तरह साफ और पवित्र बर्फ की भांति सफेद और चमकदार हैं। मुझे आश्चर्य होता

कायम है। कलाकार हूं तो अपने घर में—उसके ड्राइंग-रूम को मेरे एस्थटिक सेंस से सजने की जरूरत कभी भी नहीं हुई है। उर्वशी वाले कलैण्डर की कलर स्कीम, कमरे की सजावट से कहीं भी मेल नहीं खाती। मगर मुझे यह कहां पता है कि कलर स्कीम से अधिक कैलेण्डर की उर्वशी के मन की घुटन और दर्द जो उसके चित्र चेहरे में है, रीता को अधिक पसन्द हैं। निश्चय ही कहीं कुछ है उसमें जिसमें रीता के मन की भावनाओं का तादात्म्य है या कुछ और है—बहुत गहरा, जो उस चित्र और कलैण्डर को आउट आव डेट हो जाने पर भी वहां लगाए हुए है। किसी की प्रेम भेंट है शायद जिसे वहां से मेरे हटा देने पर मुझे एकदम ईर्ष्यालु की एकमात्र संज्ञा दिलवाती है। मैं उसे आज फिर हटाने के विचार से जब उठता हूं तो रेडियो के पास पड़े फोन की घण्टी बजती है। फोन पर भल्ला है। अपने आफिस से बोल रहा है—रीता से बात करना चाहता है। किचन में पड़ी सारी बर्फ पिघल कर नाली के रास्ते से बह जाती है या फिर चाय के लिए स्टोव पर चढ़ा दूध उफन कर एक बड़ी कर्णकटु आवाज के साथ स्टोव को बुझा देता है या फिर खिड़की पर रखे आज के ताजा अखबार, हवा के झोंके के साथ खिड़की से बाहर उड़ कर बहुत दूर—भल्ला के आफिस की ही दिशा में चले जाते हैं। किसी विरही यक्ष के मेघदूतों की ही भांति। मेरा शंकालु मन एक क्षण के लिए सोचता है एक बड़ी ऊटपटांग सी बात—शायद उनमें भल्ला के लिए कोई सन्देह रीता ने डाल कर भेजा हो। मैं देखता रहता हूं—बर्फ का पिघल कर बहना, दूध का उफन कर स्टोव को बुझाना और अखबारों का उड़ना। सुनता रहता हूं—रीता का फोन पर की जाने वाली बात के हर नए प्वाइंट पर हंसना, मुस्कराना या फिर गम्भीर होकर कुछ देर की खामोशी में हां हूं कहते रहना और तब फिर एकदम से खिलखिला कर हंस पड़ना या फिर वही रोजमर्रा वाले वाक्य— कितनी दफा समझाया है आपको, समझते क्या

नहीं हैं ? ऐसा नहीं हो सकता, (या) आपको हमेशा एक ही बात सूझती रहती है । नहीं, पापा ऐसी नहीं करते । रीता की हर मुस्कराहट के साथ मैं हमेशा मुस्कराना चाहता हूं । हर खामोशी के साथ खामोश होकर उसके मन की बात समझना चाहता हूं । मगर पता नहीं क्यों हमेशा मेरा मन रीता की ऐसी बातचीतों से फ्रिज में पड़ी बर्फ की तरह पिघलता रहता है या फिर हमेशा ही किसी खौलते दूध की तरह एकदम उफन कर किसी स्टोव को हमेशा के लिए बुझा डालना चाहता है । मैं विवश होकर अपनी कुर्सी को इधर उधर सरकाता हूं और उसकी विचार शृंखला को तोड़ने का प्रयत्न करता हूं । और तब यकायक ही मुझे बातचीत के खत्म होने के संकेत मिलने लग जाते हैं । तो फिर । हां । मटरड हां गुडीप्रोव । हां श्योर । डेढ़ बजे लन्च टाइम पर । मैं उठता हूं और दरवाजे की तरफ बढ़ता हूं । रीता रिसीवर रख कर मुझसे आ मिलती है खिलखिलाती है और कहती है— मोस्ट ब्यूटीफुल । ईर्ष्यालु कहीं के । और तब एकदम बात को टोन बदल कर मुझसे क्षमा याचना करती है । मेरे ईर्ष्यालु मन को ठंडा करने की एक हल्की सी तरकीब देती है— "डार्लिंग, छोड़ना ये सभी है । बस घण्टा लेकर बैठ जाता है बिना कुछ कहे ही । मुझे नहीं पसन्द है यह सब । और तब मुझे अपने आप बांध लेती है कुछ देर के लिए । और मेरा मन वापिस हो आता है । मुझे अपनी इस मूर्खता पर खीझ होती है । अपनी इस विवशता पर क्रोध आता है । और मैं कहता हूं अपने आप में— गुलाम है आदमी तक सुनी औरत का । उसके हाथ की अंगुलियों में बंधी एक कठपुतली है जैसे । और मैं रात भर की ही मेज पर के पानी का गरम गीकर ही ठण्डा हो जाता हूं या फिर स्टोव पर रखे पात्र में जल न कुछ दूध की बनी स्ट्रांग चाय पीकर अपने आपको ताजा महसूस करने लगता हूं । यह पुस्तक लाता है और मैं उस दुखम बहर और काम मालूम के सामाजिक दर्शन समझाना शुरू कर देता हूं ।

अपनी हीनता, अपनी दुर्बलता और अपनी विवशता के प्रसग मे मैं सोचता हू—आदमी एक मकनिकल रोबट से बढ कर और क्या है स्त्री के हाथो।

उसका उस दिन का सेशन खत्म हो जाता है और वह मुझे मुस्कराते हुए बाई बाई टाटा की टयुशन फीस देकर विदा कर देती है।

मैं रास्त भर रीना के विचित्र चरित्र क सबध म सोचता चला आता हू। मुझे लगता है जिस लक्षणाय अथवा व्यजनाओं म त्रिया चरित्र कहा जाता है वह शायद यही है। सबक लिए छलावा—जिसका मम है। मगर सबके लिए छलावा करन वाला व्यक्ति भी जीवन मे कही पहुँचता है क्या ? न पहुँच। भावी की चिन्ता स्त्री कब करती है उसके लिए तो वतमान सत्य होता है। एक एसा वतमान—जिसम उसक दोस्त हैं स्कूटर हैं, रस्त्रा है पिकनिक स्पाट है क्ल म हैं मूवी थियेटर हैं, डिपाट मटल स्टोस हैं, निओन और मरकरी लाइटो से सज बडे बडे शो रूमो वाले बाजार है और इन सबस ऊपर, सबसे अधिक जीवन्त सत्य उसका छलावा वाला प्रम है। जिसम कभी वह मिस रीता है तो कभी मिसेज बनर्जी तो कभी मिसेज खन्ना है तो कभी फिर मिस रत्ना, उपा और भी न जान क्या क्या है ? जिसको रूज स्नो और लिपस्टिक हर सुबह अगर उस अपने शहर की हेलन क्लियोपेट्रा या शची बनाकर पचास रुपयो वाले उस छोट मे फ्लट से बाहर निकालता है तो रात क आखिरी घण्टो म, जो क्लबो को खुली खिड़कियों क बन्द होने के घण्टे हैं जो रस्त्राओ की निओन बत्तिया के एक के बाद एक, बुझने क घण्टे हैं जो इन सभी बातो स सम्बधित रीता की धीरे धीरे बढती जाने वाली थकान के घण्टे हैं वह किसी शेवरलेट फोड या ब्यूक म पीछे की सीट पर निढाल पडी यहा शहर से बहुत दूर बसे एकाकी स एक बहुत बडे बगले की तीसरी मंजिल के ४ न० फ्लैट मे लाई जाकर छोड़दी जाती है। उसका बनर्जी या खन्ना जो गाडी को रोक कर पीछे

का दरवाजा खोलने आता है एक पार्टिग किस के लिए नोप्पन ह्विस्की अथवा रम की बू वाला अपना मुह उसके मुह तक ले जाता है और एक अजीब ■ सुरूर वाली अपनी आखो को उसकी आखो म डाल कर कहता है—' गुड नाइट डार्लिंग ! गुड नाइट !

ऐसी किसी भारतीय रीता के सदभ मे मुझे 'जान ओ हारा क्री एक किन्नेनी बटरफील्ड ८' का ख्याल आता है जिस सच पूछा जाय तो किसी भी खन्ना, बनर्जी अथवा मुझ जैसे कलाकार-कहानीकार मे व्यक्तिगत रूप स कोई रुचि नही है, कोई लगाव नही है।

चौथा पलशबक मुझे रीता क दो साल पहल क कमरे म ले जाता है जहा मेरे और उसके अलावा और कोई नही है। यह शायद उसकी किसी सुनियोजित योजना के ही कारण है। वह मुझे आज कोई बहुत ही गहरी बात कहने वाली है। तभी तो वह चुप है और दिना की तरह बोलती नही है। आज शायद उसका मूड पढ्ने का भी नहीं है। मैं उससे ऐसे अवसरो पर सामान्यतया बिना उसके मन की बात की थाह पाए ही कुछ बहुत अच्छी अच्छी बातें कहने लग जाता हू जिनका उसक मन पर बहुत अच्छा प्रभाव हो रहा है। वह अक्सर कहती रही है—मेरा उसका सम्पक मेरी इन्हीं अच्छी लगने वाली कुछ कडवी बातो की ही वजह से तो हुआ है जो उस समय असमय एक ऐसा अजीब सा जायका देती हैं जो किसी नियमित मासाहारी को कभी कभी शाकाहारी बनने पर मिलता है या फिर किसी गृहस्थ आदमी को कभी कभी बाजार की या होटलो की चटपटी चीजें खाने से होता है। शायद उसका कहना ठीक भी है वरना कौन है उसके सकडो मित्रो भाई साहबों अथवा मिस्टरो में से जो मेरे स्तर का है जो मेरे जसा सीधा सीधा एक निहायत सूना आदमी है जो कि अपने आपको चौबीसो घण्टे टाई सूट बूट और हैट स ढक रहता है। अथवा म यथा मेरा सम्पक इससे या भी हो कि उसे मेरी रोमाटिक कहानियाँ बहुत रुचती हैं और वह जवान है

हर जवान व्यक्ति ऐसी हर कहानी को पसन्द करता है जो उस जैसे ही किसी नायक या नायिका को आधार बना कर लिखी गई है। उसके द्वारा पढ़ी जाने वाली मेरी हर कहानी की नायिका में उसे हमेशा अपनी ही छवि दिखती है जैसे मेरा ध्यान, मेरा मन प्राण सभी सिमट कर उसी एक बिन्दु के साथ हमेशा हमेशा के लिए सबद्ध हो गया हो। सभी शायद रीता की इसी सम्पूर्णतया आत्मिक रुचि का ही परिणाम है कि आज पिछले चार सालों से मैं उसके साथ हूँ। वरना साधारण रूप से कौन लोग कलाकारों, कथाकारों को अपने मित्रों के रूप में चुनते हैं वे लोग सामाजिक प्राणी तो होते नहीं है।

मैं देख रहा हूँ, धीरे धीरे उसे अधिकाधिक समय तक घर पर रहने की आदत पड़ रही है। उसकी शाम अब शहर के रेस्त्राओं में नहीं बीतती। वह सुबह ही से घर से निकल कर नहीं चली जाती है। उसे लेने के लिए रोजमर्रा नई नई कार भी नहीं आती। उसका फोन दिन भर पहले की भांति व्यस्त नहीं रहता और तो और उसने इन दिनों मांसाहारी खाना भी छोड़ दिया है। क्या है यह सब जो आदमी को इतनी जल्दी बदल सकता है? इस बुद्ध बनने का उदय आदमी के मन में किन परिस्थितियों की वजह से होता है? जीवन की क्षण भंगुरता को देखकर या फिर परिवर्तन स्वयं में एक तथ्य ■ जीवन का एक आवश्यक तत्व, इसलिए ही। रीता इन दिनों बोलती कम है सुनती अधिक है। चुप रहकर वह दिन ब दिन मेरे बहुत ही निकट आती जा रही है। इतनी अधिक कि मैं उसके भीतर भी झांक सकता हूँ। कभी कभी मुझे लगता है शायद यह सब किसी निकट भविष्य में आने वाले भयंकर तूफान के पहले की शांति तो नहीं है। रीता के इस व्यवहार को मैं कभी भी एक सच्चाई के रूप में ग्रहण नहीं करता, सो उसे खीझ होती है। मैं पहले की ही भांति अपने नास्तिकतावाद से उस ओर किए रहता हूँ मगर वह उसका कोई उत्तर नहीं देती। हाँ कभी कभी कह देती है आपको विश्वास नहीं होता है क्या? मेरा प्रति प्रश्न—कैसे हो?

उसे फिर एक लम्बे अर्से के लिए चुप कर देता है। और अब भी मैं पहले की ही भांति उसे ताने मारता रहता हूँ। उससे जब अधिक बोला और सुना नहीं जाता तो वह अपनी पुस्तक को एक ओर पटक कर अपनी कुर्सी से मेरी कुर्सी पर निढाल आ पड़ती है।

बस तभी अपने को चित्रों की पृष्ठभूमि में स्पष्ट दिखाने वाला पोथवा पत्रकार मेरी आँखों के सामने आता है। आज छुट्टी का दिन है रीता के लिए और मेरे लिए भी। उसकी परीक्षाएँ धीरे धीरे नज़दीक आ रही हैं। उसे इन दिनों बहुत अधिक व्यस्त रहना पड़ता नहीं है रहना चाहिए। उसकी स्वयं की पढ़ाई में कभी भी रुचि नहीं रही है। वह सब तो मेरी ही प्रेरणा है। मेरा ही दबाव है। एक हालात में भी यदि उसकी रुचि अध्ययन में हो सकती है तो वह शायद मेरी उपलब्धियों से प्राप्त प्रेरणाओं के ही कारण है। जो उसकी वर्तमान जिन्दगी से बिल्कुल विपरीत मेरे नागरिक क्षेत्र के कुछ अजीबोगरीब सम्भावनाएँ उसे दिखाती है। वह सोचती है। वह एम ए करेगी पी एच डी करेगी और तब पोस्ट डाक्टोरल स्टडीज के लिए विदेश जायगी, विदेशों का भ्रमण करके लौट आने पर अपने ही देश में कहीं प्राध्यापिका बनेगी। अध्यापन में उसकी रुचि है— यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

मुझे आश्चर्य होता है यह देख कर कि वह अपनी पुस्तक पढ़ने के स्थान पर कमरे में चारों तरफ अपने एल्बम के ढेर सारे चित्र बिखरा कर उनके बीच में बैठी है सभी चित्रों की केन्द्रीभूत सन्दर्भ बन कर। अपने आपमें कुछ भूली सी रीता मेरे आगमन से चौंकती है और सारे चित्रों को समेटने के प्रयास में जब अपनी दोनों बाहें फैलाती है तो मैं उसे ऐसा करने से रोक देता हूँ। मैं इतना शुष्क हृदय तो नहीं हूँ कि उसकी रुचियों में बिल्कुल भी रुचि नहीं ले सकूँ। सभी चित्रों को एक एक करके देखता हूँ। अधिकांश उसके पुरुष मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियों के ही चित्र हैं। चित्रों को देख देख कर उन्हें एक एक करके रीता को देता जाता हूँ,

चित्र स सम्बधित अपने कमेन्टस के साथ। उन कमेन्टस मे रीता से उन व्यक्ति-विशेषो के सम्बन्धों के भूत का विवरण, वनमान का विश्लेषण और भविष्य की घोषणा भी है। बहुत लोगो को मैं जानता हूँ कुछेक को व्यक्तिगत रूप स और अन्यों का रीता के माध्यम स ही।

कुछ चित्रों को वह ललचाई नजरो स दखती है तो कुछ चित्रो की उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से भी। ज्त्पा के चित्र को देखकर जब मैं अपनी राय देता हू तो वह उससे सहमत नही होती। वह अबकी बार चुप नही रहती और कह दती है—'इनम अब मरी कोई रुचि नही है। पता है, कितना परेशान किया ह मुझे और अब स सुरिन्दर कौर और लप्पा की बातचीत मैंने सुनी है तब स तो बस एकदम ही मन फट सा गया है एकदम नफरत सी हो गयी है। मगर क्या करू, कुछ समझ म नहीं आता है। अब की बार मैं निश्चय ही शादी के लिए आने वाले किसी भी 'आफर' को स्वीकार कर लू गी अब रहा नहीं जाता है।

रीता क सग्रह म स अपने दो चित्र निकाल कर जब मैं अपने पास रखने लगता हूँ तो वह मुझस छीन लेती है। मैं रीता को समझाता हू इतने सारे भूतो म मरा एक भूत कहा ठहरेगा तुम्हारे मन मे ? तो वह हस देती है। भूत शब्द की द्विर्थक अभिव्यक्ति को समझ कर। 'रीता! या तो य चित्र मुझे वापस लौटादो अभी ही या फिर इन्हें फाड दो। इतने सारे लोगों मे मैं भी रहू एक तरफ अनजाने, अन पहचाने रूप म — मुझे अपने लिए यह कुछ ठीक नही ज चता। तुम्हे इस बात की पूरी स्वतन्त्रता है कि तुम अपने परिचितो और मित्रों की सूची स मेरा नाम काट दो। उससे मुझे कोई दु ख नही होगा। लेकिन इसके विपरीत यदि तुम अपने लिए यह आवश्यक समझती हो कि मेरा नाम भी इन ढेर सारे नामों और सन्दर्भों के साथ रहे तो मरी भी एक अपेक्षा है तुमसे। एक ऐसी अपेक्षा जिसे अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के

लिए मैं अत्यधिक आवश्यक मानता हू। वह यह कि मेरा नाम और मेरे सन्दर्भ इन सभी नामों और सन्दर्भों की सूची म सबसे ऊपर रहे। एक बहुत कठिन शर्त है रीता यह, तुम चाहो तो इसे मानने से इंकार कर सकती हो।'

रीता के आत्म-सम्मान को ठेस लगती है शायद। वह मेरी बात को नहीं मना करती है। वह चुप है। मेरी शर्त उसे मंजूर है शायद क्योंकि मौन स्वीकृति का ही लक्षण होता है। तब मैं उसे कहता हूँ— तो रीता फिर य दोनो चित्र तुम न अपनी मर्जी स फाड़ोगी और न ही अपनी मर्जी स मुझे लौटा सकोगी।'

ठीक है। लेकिन आप इतने वैसे क्यों हैं? कुछ भी तो समझ म नही आता।' मैं उससे और कुछ नहीं कहता। मैं भी कहा चाहता हू कि वह मुझे जितना समझो हुई है उसस और अधिक भी समझे। आदमी के व्यक्तित्व मे कुछ गोपनीय हो तभी तो वह आकर्षण का कारण बना रह सकता है। मैं रीता जसे व्यक्तियो मे सम्बन्धो कुछ सीमाए रखना पसन्द करता हू। तभी तो मैं उसे इसस अधिक कुछ नही कहता। बस कह देता हू—एक बडी अजीब सी बात जो मैंने कही पढ़ी है मुझे एकाएक याद आती है

If I q it your arms tonight
And chance to die before it is light
I would advise you and you might
love again tomorrow

वह मुझे एकटक देखती रहती है। उसकी दृष्टि म एक क्षोभ है एक शिकायत है और है एक बहुत पुरानी माग। मुझे लगता है जसे वह कुछ कहना चाहती है। मैं जब उसे इसके लिए उकसाता हूँ तो वह बोलती है—'चक्रवर्ती! मुझे रत्नाकर क गर्भ रह गया है। मैं नही

चाहती थी मेरी शादी हो। क्या तुम आज ही मुझसे अदालत में चल कर सिविल मैरिज कर सकोगे। फिर हम कहीं दूर चले जाएँगे। इतनी दूर जहां हम जानने वाला कोई न हो। सच! चक्रवर्ती मैं इस जिन्दगी से अब ऊब चुकी हूं। क्या तुम यह एहसान मुझ पर करोगे?

मैं किंकर्तव्यविमूढ उसके चेहरे की तरफ देखता हूँ। उसके चेहरे में काफी पुरानी बसी अपेक्षाओं की वह रेखा अब शायद मिट गई है उसने उस माँग का रुख जो दिया है। मेरी चुप्पी उसके दिल और दिमाग के खालीपन के लिए बहुत अधिक है। लगता है, जैसे उसका बस चले तो वह अभी मुझे झिंझोड़ कर रख दे।

'रीता मैं ।' इससे पहले कि मैं संयत होकर उसे कुछ कह पाऊं शायद वह मेरी बात को ताड़ लेती है। वह वहां से चली जा रही है और

और आज कानपुर से यह बिना चिट्ठी वाला लिफ़ाफा मुझे मिला है जिसमें मेरे ही दो चित्र हैं। कानपुर की मोहर देख कर मुझे कानपुर वाले उस खन्ना की याद आती है जिसने रीता को कभी बहुत परेशान किया है, जिसमें रीता की अब कोई रुचि नहीं है जिससे उसका मन फट सा गया है, और उसे नफरत हो गई है। ●●●

दो

लक्ष्मी

बस्ती की एक मुख्य सड़क के बीच में मैंने भी एक ठेकेदार के एक साथ लगे आठ दस कोठों में से एक कोठा किराए पर ले लिया है। मेरे शुभचिंतक लोग कहते हैं—जगह अच्छी नहीं है। मगर मैं तो सोचती हूं, इससे और अच्छी जगह कौन सी होगी, और फिर मेरे जैसी नए धंधे वाली औरत के लिए तो कम से कम। जहां बिजनेस अच्छा चलता हो वही जगह तो अच्छी होती है। मेरे कोठे के सामने से सभी प्रकार के लोग गुजरते हैं, तभी तो थोड़ा बहुत धंधा चलता है।

यहां बैठते मुझे यह तीसरा महीना है।

सोचती हूं—कुछ भी हो कैसे भी हो 'उनके' लिए तो कुछ इंतजाम करना ही पड़ेगा। कल शाम तक भी जब कोई भी ग्राहक नहीं आया था तो उस ठेकेदार के लड़के को ही (जो शायद हम लोगों से

सबने मिलकर उससे अनुरोध किया था कि आज वह उन्हें कम से कम एक एक जाम तो पिला ही दे। बेचारा गरीब इन्सान। उसके बेटे की सालगिरह के दो चार दिन पहले ही उसे मिल मालिक के बच्चे ने नौकरी से निकाल दिया था। वह गरीब कहां से लाता अपने अजीज दोस्तों के लिए एक एक जाम। मगर सालगिरह की खुशी में कुछ तो होना ही था। महमूद मेरा जिगरी है उसका बेटा मेरा बेटा है तो क्या मैं अपने उस बेटे की सालगिरह में दोस्तों द्वारा मांगी गई पार्टी मांगे जिस नहीं कर सकता था? नहीं क्यों कर सकता था? मैंने दी थी और उस साली लक्ष्मी से पैसा लाकर सबको एक एक जाम नहीं एक एक पौवा पिलाया था। साली समझती है—मैं उससे लव करता हूं। सम भली रहे, मुझे इससे क्या मतलब है? मुझे तो बिना मेहनत किए पैसा मिलता है और मिलता रहेगा। कभी कदास एक दो प्यार के शब्द कह देने में अपनी गांठ का क्या जाता है? हां, उसे पोटता हूं तो कभी कभी प्यार भी तो कर लेता हूं। मगर तब भी वह निपट गधी क्या समझती है कि हाथी के दांत खाने के और होते हैं और दिखाने के और।'

लेकिन हां मैं मित्रों के लिए इतना करता हूं तो भी मित्र क्या मुझे अक्सर कहते रहते हैं। जिनमें वह कमबख्त किशन तो पूरा आदर्शवादी बना फिरता है। सबको मैं यह आदर्शवाद वाली बात होती ही है—जाने क्यों? छोड़ दूं उसकी दोस्ती, मगर नहीं छोड़ पाता चाहते हुए भी। क्योंकि वैसे दोस्त मुझे कम ही मिले हैं। वह तो मेरी सोसाइटी में रहने की बात तो और, पिक्चर देखने भी हम लोगों के साथ जबरदस्ती करने पर हो गया है। मगर तब भी कहता बहुत है— 'अशोक तुम्हारी यह डबल पॉलिसी ठीक नहीं है। लक्ष्मी बेचारी कितना करती है तुम्हारे लिए जान देती है मगर एक तुम हो कि तुम्हारे कानों पर जूं तक भी नहीं रेंगती। उस खूब सूरत जान

को क्या सुनाते हो ? शादी क्या नही कर लेते ? यह तो कहता नहीं। कहता है— 'रख क्यों नहीं लेते उसे अपने पास। तो क्या उसे मालूम पड़ गया है कि लक्ष्मी मेरी विवाहिता पत्नी है जिसे मैंने छोड़ रखा है। कह दिया होगा उस लक्ष्मी की बच्ची ने। उसी की बात में आकर दूसरे फ्रेण्डस भी कहने लगे जाते हैं तुम हम लोगों में ठीक हुए तो क्या हुआ ? उसके पवित्र प्रेम को तो धोखा देकर ही हम लोगों को मिलाते हो।' शर्म आनी चाहिए, जानते हो वह तुम्हें पैसा देने के लिए ही दो दो दिना तक भूखी भी मर लेती है।' अरे बेचारी की आंख में भी कितनी शर्म है, हम जो उधर से गुजर भी जाते हैं तो घूंघट सा कर लेता है। इतना अर्सा हो गया अभी तक नही समझे क्या वह रूप में एक पवित्र आत्मा है। महादेवी है। अशोक अपनी आंखें खोलो।

ऐसा लगता है कि जैसे कम्बख्त ने सबको सामने बैठाकर अपनी दर्द भरी कहानी सुना दी हो।

लक्ष्मी

काफी दिन हो गए हैं। साथवासियो से पैसा उधार मांगते हुए अब नही सहा जाता। शायद रकम सैकडों पर पहुँच गयी है। कुछ भी करूं अशोक के लिए तो पैसों का इंतजाम करना ही पड़ेगा। बस वे एक प्रसन्न हैं मुझसे तो मुझे और किसी की चिंता नही। आखिर तो मेरे भी वे दिन कभी लौटेंगे जब अशोक ने मुझसे प्यार किया था। हनीमून मनाने हम विलायत गए थे। मगर जब शादी के आठ साल बाद भी मुझे परमात्मा ने बच्चा नही दिया था तो बस । आगे नहीं सोचूंगी। मगर आदमी भी क्या होता है ?

आजकल तो ग्राहक आना भी बहुत कम हो गया है। चार २ पांच २ दिन तक कोई नहीं आता। लोग कहते लगे हैं— 'चर स में क्या, यह मूमट ता अब बुड्ढी हो गई है। दो दो रुपयों म नोट कोई ररात म कैसे फेंक दे ?' और हां दो और भी तो जोधपुर से नई आ गई हैं अभी तो उनके पौ बारह है।

अभी यहां जो एक ना आन है एक दो हफ्ते म व भी ब हो जायेंगे क्योंकि अभी न नई दोनों को भी बहुत स लोग नहीं जानत।

य दोनों जोधपुर स आई हैं तो क्या मैं जोधपुर जाकर नई नहीं हो सकती ? हो सकती है, तब फिर तो अब ी तरह स अपने मनोज को रुपए भेज सकूंगी।

— तब मनोज फिर पहले की तरह अनोज मनोज हो सकेगा। उसके लिए व कितने अच्छे आदमी हैं।

— हा, हो सकता है अगर मैं उन्हें खुश रखू तो शायद व मुझे फिर रखना पसन्द करेंगे।

किशन (जो) लक्ष्मी मुझे इसी नाम से पुकारती है।

मैंने लक्ष्मी को बीकानेर क ही एक प्रसिद्ध जनमार्ग पर एक कोठा लेकर बठ देखा है। लक्ष्मी क या को देखा है उसकी नारी को देखा है। अपना व्यापार करती है। दो दो रुपए मे कोई भी उस कु समय के लिए खरीद सकता है— कितना घृणित काय है कैसी कुत्सित कल्पना है वह कल्पना नहीं यथार्थ है। लेकिन क्या हुआ ? यह ना नारी भी है— यह कौन देखता है ? उसका प्रम कितना पवित्र है मनोज को वह अपना देवता मानती है। अपना आराध्य समझ पूजती है उन्हें। उन्हें पैसा देने को स्वयं भले ही भूखी रह जाय म

आाक जो उसके अपने' हैं उन्हें वह कैसे असन्तुष्ट रक्खे ?

कितना पवित्र प्रेम है कितना ऊंचा आदर्श है ? यह मेरे अथवा मेरे पाठकों के अतिरिक्त और कौन समझ सकेगा वह भी एक नारी है, उसके भी एक पेट है, उसे भी एक नारी की भांति जीवन में प्रेम की भूख है।

और हां मनोज को भी देखा है। वह भी हमारे बीच का ही एक इन्सान है। सच्चा मित्र कहूँ उसे। उसने मुझे भी अपने और दोस्तों के साथ कई बार पिक्चर दिखाए हैं। मित्रता के नाते मानता हूँ उसका आभार मगर यह कहे न रहूँ कि वह दुष्ट भी है, निकम्मा इन्सान एक परासाइट जो दूसरों पर जीता है। कभी सुना था—"ए परासाइट इज वन हू लिव्ज अपान अदर्स।'

कितनी बार समझाया उसे—' क्यों बेचारी गरीब जान को मारता है ?' मगर उसे क्या उसके दिमाग में तो कुछ बठे तब न।

अभी तक तो उसकी बात मैंने किसी को बताई नहीं है, मगर अब मुझे उम्मीद है पूरी, कि जब बात यों खुल ही गई है तो वह अपनी लक्ष्मी को फिर से अपना ही लेगा। ●●●

तीन

गुरुदेव का पत्र सुरेखा के नाम

२८-६-६१

सुरेखा,

इतनी भीषण गर्मी में किसी भी सम्बन्ध में तुम्हारी दिल्ली आने के निश्चय में सनकी नहीं था मगर अब लगातार कोशिश के बावजूद भी अपने आपको न रोक सका तो तुम्हें बिना सूचित किए ही जयपुर से रात का आठ घण्टे का सफर तय करके दूसरे दिन दिल्ली जा पहुंचा। मनुष्य पर संयोग और स्मोग से का कितना बड़ा दान है। रवाना होने के एक सप्ताह पूर्व तुम्हारे पते पर पत्र डालकर पहले पता तो कर ही सकता था कि तुम जल्दी ही सुरेश के साथ किसी बड़े हिल स्टेशन को जा रही हो, मगर दो तीन सालों पहले की तुमसे की हुई भेंट की स्मृति और तुम्हारी राज्य सरकार कला अकादमी द्वारा, तुम्हें राज्य की सर्वश्रेष्ठ चित्रकर्त्री के सम्मान से सम्मानित

किए जाने के दनिक समाचार पत्र के समाचार ने अस मुझे एकदम से झकझोर ही डाला। अपने काम म अधिक अवकाश न होने पर भी मैं अपने आपको रोक न पाया।

चार पाच साल पहले मेरी कही गई बात शायद तुम्हें अब जब तब जाती होगी जब मैंने तुम्हारी अन्य सहेलियां—ऊषा, रत्ना और कचन आदि की तुलना मे तुम्हें एक बहुत अच्छा और कुशल कलाकार बताया था। तुम्हें अपनी एक योग्य छात्रा के रूप म इस सीमा तक सराहने के अतिरिक्त मैं और कर ही क्या सकता था? तुम्हारे कला के निर्माता उन सुदर गोरे गोरे हाथों तथा हर चीज के अतस म पैठ कर सूक्ष्मतम निरीक्षण करने वाली उन नुकीली आंखों की मैं और किन शब्दों म सराहना करता? मैं भी तो चित्रकला का एक अदना प्राध्यापक ही था कोई कवि या लेखक तो था नहीं जिसे अभिव्यक्ति के नाम पर किए गए हर जुम से माफी होती है। अकादमी का इतना बडा पुरस्कार और सम्मान पाकर निश्चय ही तुम्हें कुछ अजीब सा लग रहा होगा मगर मैं जानता हू तुम इन सबको डिजव करती थी। निश्चय ही एक गृहस्थिन का गृहस्थ से बाहर के किसी एक क्षेत्र म, इस प्रकार या एकदम चढ जाना, हम परम्परावादियों को कुछ अटपटा सा जरूर लगता है मगर तुम्हारे पति का तुम्हें मिलने वाला यह प्रोत्साहन, निश्चय ही तुम्हारी इस उपलब्धि के लिए एक सौभाग्य था। वह पति भी मूरख निश्चय ही एक साधारण पति नही है जिसका प्रोत्साहन उसकी पत्नी को गृहस्थ के बाहर के ऐसे किसी क्षेत्र म इतनी बडी उपलब्धि करा सकता है।

——मगर सुर! तुम्हारे इस पति के बारे मे क्या कहा जाय, जिसके बारे म तुम्हारी पत्नीमिल सहेली ने मुझे बताया है कि वह तुमसे सतुष्ट नहीं है। ऐसा क्यों है? क्या

मानवों से भी कोई असंतुष्ट हो सकता है ? मुझे तो समझ में नहीं आता क्या हो जाता है इन पतियों को ? आत्मीयों की अपेक्षाओं की सीमा आखिर कहां तक है, क्या उसके भी आगे है कहीं, जहां एक पक्ष दूसरे पक्ष के संतोष के लिए अपना तन, मन धन सभी कुछ अर्पित कर देता है। भारतीय संस्कृति का नारी जाति को दिया हुआ यह दुर्भाग्य भी क्या एक पति के संतोष के लिए काफी नहीं है। सुरे ! मैं तुमसे एक बार मिलना चाहता था। और तुम्हारी पड़ोसिन से हुई मेरी बातचीत के बाद तो बस एकदम ही तुमसे मिलने को बेचैन हो उठा था मगर विवशताओं की भी अपनी एक अलग शक्ति होती है न। तुम तो चली गई थीं मैं बता फिर किससे कुछ पूछता, किससे कुछ सुनता ?—जब रहा नहीं गया तो तुमसे कुछ सुनने भर ही के लिए अपने अन्दर उमड़ते घुमड़ते तूफान को ठण्डा करने के लिए ही तुम्हें कुछ लिखने बैठ गया हूं।

आशा है, जब तक तुम्हारे पास यह पत्र पहुँचेगा तुम दिल्ली पहुंच जाओगी। तुम्हें अधिक दुःखी नहीं करूंगा, मगर एक बात पर कि लौटती डाक से अपनी सारी स्थिति खुलासा लिख कर मुझे भेजोगी।

अपनी अपूर्व उपलब्धि के लिए मेरी हार्दिक बधाइयां और आशीर्वाद लो।

पूर्ववत् स्नेह के साथ ही—

तुम्हारा,

रवि बनर्जी

गुरेवा का पत्र ऊषा के नाम

३०-६-६१

ऊषी,

आज चार साल बाद अचानक फिर इस तरह मेरा पत्र पाकर तुम्हें आश्चर्य तो जरूर होगा, मगर वेदनाओं से ऊपर तक भर गए मन को उनके लिए कोई न कोई आउटलेट तो ढूंढना ही पड़ता है न। हर पात्र की एक निश्चित कपसिटी होती है – द्रव ठोस या गैस पदार्थ को अपने अन्दर रख पाने की। उस कपसिटी से अधिक डाला गया पदार्थ या तो स्वतः ही उसमें से सहज रूप में बाहर निकल पड़ता है या फिर यदि वह अवरुद्ध किया जाए तो अपनी शक्ति संगठित कर उस पात्र ही को नष्ट कर डालता है। वेदनाओं और रोज़ के नए नए उपालम्भों और तानों को सुनते वाले मेरे मन और मस्तिष्क की भी अब यही दशा हो रही है मुझे लग रहा है। शायद वेदनाओं और तानों को अपने अन्दर रख पाने की अथवा सहने की उनकी कपसिटी समाप्त हो गई है या फिर उनका परिमाण अनायास ही आवश्यकता से अधिक बढ़ गया है।

ऊषी! कहते हैं दर्द कहने सुनने से हल्का हो जाता है। अन्दर के तूफान को जब कोई राह मिल जाती है तो वह फिर और नहीं भड़कता। तुमसे रेस्पोन्स मिले न मिले, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है मगर अपने जी का यह झूठा दाढ़स तो दे लूँ।

शादी के वक्त मेरे पति के बारे में जो धारणा तुम्हारी थी वही मोटे रूप में मेरी भी थी। ऐसा सुन्दर आकर्षक और हँस-मुख व्यक्ति इतना दुःखदायी और शक्की भी हो सकता है यह कल्पना

मैंन स्वप्न म भो न ो की थी। मगर अब क्या तू मेरे इस लिखने पर वि वास कर सकगी कि मै यहा अपने तन और मन से पतिव्रता होकर भी अत्यधिक कष्ट मे हू।

जिन कुन्दन के से खरे चरित्र वाले और पारस से उदार परोपकारी अतिमानव गुरुदेव रविबाबू के सम्ब घ म हम लोग कभी स्वप्नावस्था मे भी *सन्दय न कर पाए उन्ही पर दिन म हजारो बार* वभिभवे कीचड उछाल कर भी उ ह चन नही मिलता। मेरी हर क्रिया मे उ ह एक गम्भीर षडय त्र रचा हुआ दिखता है। मरी हर बात उ ह धोख और छल से भरी हुई नजर आती है। मेरे सोचन पर भी यहा प्रतिब घ है एक मिनट क लिए भी चुप बठ कर गम्भीर मुद्रा म मैं रह नही सकती। ग्र हर लिखन पढने पर स देह किया जाता है जिससे म घर स बाहर कही किसी को पत्र जसी कोई चीज न लिख दू विशेष कर गुरुदव को जिनकी उनको हर पल हर वक्त आशका रहती है। मै घर स बाहर नही निकल पाती मेरे चारो तरफ पहरा रहता है। और तो और महीनो हो गए, कू ची को मैंन हाथ भी नही लगाया। कितनी बार उनस मिन्नतें की मगर व पत्थर दिल कहा पसीजे? मिन्नतें बाहर निकलन दन की नही पत्र लिख पाने क लिए भी नहीं, महज चित्र बना पान की अपने दिन भर के थके शरीर और मन को दो घडी कू ची की खींची हुई उन रेखाओ और इन्द्र-धनुषी रगों म डूब जान दन भर की। मगर जान क्यो? मुझे समझ म नही आता जब भी मैं अपनी इस इच्छा की कोई बात करती हूँ, व भु भला कर कह उठत हैं— बस झगडा तो इसी बात का है। मैं नही समझती इस बात का क्या झगडा हो सकता है? शि य यही कि मैंन अपना हर चित्र नया या पुराना गु दव को सादर भेंट कर रक्खा है। यही बस इतना सा ही मरा यदि कुसूर है तो मैं कुसूरवान ही

रहना चाहती हूँ। व मुझे समझ क्यों नही पाते ? मैं नही मानूगी। ऊषा ! मानिनी सुरेखा को तो तुम जानती ही हो न। आखिर हमारी श्रद्धाओ का भी तो कोई मूल्य है न। पति को हमने अपना प्रेम दिया। अपना तन और मन सर्वस्व अर्पण किया तो क्या अपनी श्रद्धा भी अपने उन गुरुदेव के श्री चरणों म अर्पित नही कर सकतीं जिन्होंने हमारे बाम क [illegible] आये नारीत्व को कला के स्वर दिए हमारे पोर पोर को जगा दिया, कालेज के वातावरण म निडर हमारे युवा और उच्छृंखल मनो को कला के संयम और अनुशासन म बाध कर हम किसी क योग्य बनाया। मेरी यह श्रद्धा ही यदि मेरा दोष है तो मैं दोषी ही ठीक म ी। क्योंकि मुझे पता है मैंने उनके शकालु मन को समझाने के क्या क्या प्रयत्न नही किए। जाने क्यों इन पतियो की शकाओ की कोई सीमा भी नहीं है ? नाम कर सी आई डी म होकर तो आदमी कभी भी एक सफल पति नही बन पाता।

रहा भी तो नही जाता इस तरह, और छोडने मे भी निस्तार नही दीखता। कोई रास्ता सुझाना आभार मानूगी।

तुम्हारी पहले सी ही—

सुरेखा

सुरेश का पत्र राय बनर्जी के नाम

२-६-६१

आदरणीय तथाकथित गुरुदेव !

सादर प्रणाम ! कला के माध्यम से भोली भाली सुशील लडकियो को फंसा फंसा कर उनके भरे पूरे घरो म आग लगाते हुए क्या आप किंचित भी नही सकुचाते ? मानता हू आपकी इस अटकल-बाजी के लिए फाइन आर्ट्स, लिटरेचर या पार्लियामेंट्री जैसे कई सुवविस्ति

की सूचना नहीं देता कि आपके पूर्व निश्चित कुछ कार्यक्रम थे।

कलाकार साहब! मानता हूँ, आपका सुरुचि बोध भी काफी परिष्कृत है। आपने लिखा है न सुरेखा को,

तुम्हारी कला के निर्माता उन सुन्दर सुन्दर गोरे गोरे हाथों तथा हर चीज के अन्तस में पैठ कर सूक्ष्मतम निरीक्षण करने वाली उन नुकीली आँखों की मैं और किन शब्दों में सराहना करता!

मगर यह इतना परिष्कृत सुरुचि बोध कहीं उल्टा आपकी ही जान का ग्राहक न आ बने, इस सद्भावना और सहानुभूति के साथ मैं आपको प्रथम और अन्तिम बार यह लिख देना चाहता हूं कि भविष्य में सुरेखा से किसी भी प्रकार का मानसिक या पत्रों का सम्बन्ध आपके हित में अच्छा नहीं होगा। वैसे आप स्वयं समझदार होंगे।

आपका शुभेच्छु

सुरेन

उषा का पत्र सुरेन के नाम

७-७-६१

आदरणीय जीजाजी,

सादर नमस्कार। मेरा पत्र पाकर निश्चय ही आपको आश्चर्य होगा मगर आपके द्वारा प्रगट किए गए आश्चर्यों से वह आश्चर्य कहीं कम है। उनकी यों खुले आम (बनारसी स) चर्चा करना मैं पहल जरूर समझती हू। वय में छोटी होते हुए भी ऐसा पत्र लिखने के अपने अधिकार का प्रयोग करने की धृष्टता अवश्य ही खटकेगी, आशा है क्षमा कर देंगे। आपको शायद यह जानकर अधिक आश्चर्य नहीं होगा कि पिछले पांच दिनों से सुरेखा मेरे ही यहां है। अच्छा होता यदि वह आपके यहां ही घुट घुटकर मर जाती और मर कर भी कम से कम अपना पातिव्रत और

स्वामिभक्ति का तो सबूत दे पाती मगर कहाँ आपने उसके दुर्बल मन और तन में इतनी शक्ति ही कहाँ छोड़ी थी कि वहाँ रह कर अपने मालिक की सेवा का अपनी सामर्थ्य भर तक कर पाती। आप जानते होंगे मगर फिर भी इस बात को दोहरा देना जरूरी है कि सुरेखा के शरीर के हर हिस्से में आपकी कृपा का कोई न कोई चिह्न है अब भी है इतने मास दिनों के बाद भी और, उसके मेरे यहाँ आने से लेकर उसी दिन से शहर के अच्छे से अच्छे डाक्टर से उसका इलाज कराते रहने पर भी अभी तक उसने बिस्तर नहीं छोड़ा है। यदि एक पति एक चरित्रवान और पतिव्रता स्त्री की अपेक्षा रखता है तो वह स्वयं क्यों एक साधारण पति नहीं रह सकता ? सुरेश बाबू शायद आपको यह पता नहीं है कि सुरेखा ने पिछले पाँच दिनों से कुछ भी नहीं खाया है, महज इसलिए कि पति के खाना खाने से पहले खाने की न तो उसकी आदत ही है, और न उसे खाना भाता ही है। उसे अब अपनी जिन्दगी से जिसे आपने अकारण ही उसके लिए बोझ बना दिया है कोई भी मोह नहीं है। यदि उसका हर समय ख्याल न किया जाता तो वह अभागिन कभी की मर गई होती मगर शायद आपको पता नहीं है कि वह सिर्फ आप ही के एक बेकसूर बच्चे के लिए, जो पिछले नौ महीने से उसके गर्भ में पनप रहा है, जिन्दा है। और महज इसी आशा में कि भगवान एक दिन आपको सद्बुद्धि देगा, उसकी अटूट पतिभक्ति के लिए आपके विकृत मस्तिष्क में कुछ सद्भावना जगायेगा। गुरुदेव के पत्र में सुरेखा ने एक बार मुझे पूछा था आदमी की भावनाओं की सीमा आखिर कहाँ तक है ? क्या उससे भी आगे है कहीं जहाँ एक पशु दूसरे पशु के सन्तोष के लिए अपना तन मन और सभी कुछ अर्पित कर देता है ? सुरेश बाबू ! गुरुदेव को मैं भी उतनी ही श्रद्धा से अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार हूँ सिर्फ इसलिए कि उनका मन बर्फ की तरह साफ और चमत्कार है। प्रेम यदि मानव मन की भावना है तो श्रद्धा क्या उसका अधिकार नहीं है ?

जीजाजी ! सुरेखा के एकदम स यों चले जाने का आश्चर्य जरूर होगा, लेकिन अब उसके दुबल शरीर म बसने वाले दृढ मन ने भी यह प्रतिज्ञा कर ली है कि वह स्वयं आपके यहा आकर अकारण आपकी मार नही सकेगी। सच्चे मन का आत्म बल शायद आपने अभी तक देखा नही है, अब देखिएगा।

आपको अप्रिय लग सकने वाले इस प्रलाप के लिए क्षमा माग कर मैं परमेश्वर स आपको सद्बुद्धि देने की प्रार्थना करती हू।

आवश्यक समझे तो यहा दम तोडती अपनी आग भी पवित्र धर्म पत्नी को आकर ले जाए।

अपने हृदय की समस्त शुभकामनाओ के साथ

आपकी,

ऊषा

गुरुदेव का पत्र सुरेश के नाम

३-७-६१

सुरेश बाबू

आपका कृपा पत्र मिला। सुरेखा जैसी आदर्श पत्नी के सब ध म आपके पूर्वाग्रही मन की कुछ शिकायतें मैंने आपके पत्र मे देखीं। मुझे कष्ट हुआ यह जान कर कि उसकी निर्दोष श्रद्धाए ही आपके असतोष और अव्यवस्थित पारिवारिक जीवन का एक मात्र कारण हैं। आपकी दृष्टि म यदि सारा दोष मेरे ही कारण है तो मैं आपके दाम्प त्य जीवन के सुख के लिए किसी भी सुरेखा को अपनी एक छात्रा

तक से भी इंकार कर सकता हूं। वैसे आपने मुझे इतना रोष भरा पत्र लिख कर और सुरेखा के अनुकरणीय चरित्र पर छींटाकशी कर निरर्थक ही अपनी शक्ति और श्रम का अपव्यय किया है। सुरेश बाबू ! सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए पूर्वाग्रहों और व्यर्थ के मनायों को छोड़ना पड़ता है उनके लिए पति पत्नी में एक दूसरे के प्रति आस्थाओं और विश्वास की आवश्यकता होती है।

सुरेखा से कहियेगा यदि वह मुझे श्रद्धा की दृष्टि से देखती है तो वह आज ही से कम से कम मेरे ही लिए अपनी पेंटिंग की हॉबी को छोड़ दे। और यदि आप अधिक उदार न बन सकते हैं और एक अच्छी पत्नी की चाह के साथ साथ उसका मानसिक विकास भी आवश्यक समझते हैं तब फिर आपको प्रयत्न करके एक अच्छा पति बनना पड़ेगा।

आवश्यकता समझें तो याद करियेगा।

आपका ही,

रवि बनर्जी

सुरेश का पत्र ऊषा के नाम

१० ७ ६१

ऊषा

तुम्हारे और सुरेखा व रवि बाबू के दो पत्र मिले। सुरेखा को सने मैं कल ही तुम्हारे कानपुर पहुँच रहा हूं। सुरेखा के सम्बन्ध में तुम्हें जो कष्ट हुआ उसके लिए, उसकी ओर अपनी तरफ से क्षमा मांगता हूँ। उसे मना कर रखना।

सुरेश

चार

जैसे एक कविता और एक उपन्यास सरला और मैं—यूनीवर्सिटी की साउथ विंग के एक कोरिडोर में एक किनारे पर बैठे थे। सरला— सुन्दर कलात्मक आवरण एक भ्रम सा कुछ, जो दिमाग को बगैर परेशान किए आसानी से समझ में नहीं आता। कितना सुन्दर नमूना था एस्थटिज्म का। कभी भी किसी भी क्षण हर किसी से कहना पड़ता—बहुत सुन्दर। और वही बहुत सुन्दर मेरे सामने कविता सी सिमटी लिपटायी, अपने आप में उलझी सरला बैठी थी। मेरा मूड ठीक नहीं था।

'सरला! विल यू सी मैडन एण्ड द फिलास्फर?'—मैंने पूछा। 'बोर कर बिना क्या तुमसे नहीं रहा जाता? अमित! मैं मानती हूं बस कि लड़कियां इन्टलीजेन्ट नहीं होतीं। मैं एक कविता हूं—और तुम एक नॉवल अनुभूतियों का रोचक अध्याय। पूरे जीवन की एक खुली किताब। जैसा कि तुम कहते हो। बट आई डू नाट अण्डरस्टैण्ड व्हाई डोण्ट यू बिहेव?

डा० सिंह की छोटे छोटे कदमों वाली प्रोफेसराना चाल मुझे कभी नहीं भाई। शायद वही थे। पास से निकलते हुए बोले— हलो अमित। हाउ डू यू डू ?

मैं एस चौंका, जसे एक्टम खुन म पकड़े गए हो हम। मैं जवाब दे पाता उसस पहल ही वह आगे निकल गए थ।

सरला के पास लौटा तो वह प्रश्नसूचक दृष्टि स मुझे एसे देख रही थी जसे उसका पूछ म रुका गया प्रश्न अब भी लौट कर आएगा और मुझे परेशान करेगा। मैं उसके प्रश्न को भूल कर अपने सामने बठी सरला को देख रहा था बल्कि उसे एकटक देख कर जसे आज याद करने की कोशिश करने लग रहा था। सरला–भूली भूली सी दो आखें। शायद यही दो आख थी जसे सरला हो। दुनिया भर को भूलती हुई आख ही मेरे लिए इस दुनिया म जस याद करने भर को रह गई थी। मैंने अब तक किसे इतना देखा था—जितना सरला को, उसकी आखो को देखा था। भूल सकता है भला कौन तुम्हारी आख।—लुध्यानवी का गजल! उनके बाद तो और क्या था! बस सावला सा रग, सादगी की एक जीती जागती तस्वीर। न क्रीम न स्नो न रूज लिपस्टिक न और कुछ। बालो म तेल भी एक बहुत सीमित मात्रा म समान कर कर कर लगाया हुआ।

सुडौल साच म ढल शरीर पर अत्यधिक सोबर रग की एक साडी और उसी स मच करता ब्लाउज।

आखों के बाद उसकी सादगी और चुप्पी न मुझे परेशान कर रखा था। क्या एक लड़की सबके साथ म को एजूकेशन में पढ़ते हुए भी उतनी चुप रह। चुप रह कर पढ़ना-लिखना होता है तो प्राइवेटली एम ए क्यों नहीं कर लिया जाता है? इतना रिजर्व रहन म

क्या अर्थ हो सकता है ? रिजर्वनेस उसकी विवशता है, अथवा उसका चारित्रिक गुण–यह रहस्य मुझे कभी समझ में नहीं आया।

शायद यही विचार अक्सर मेरा मूड खराब कर देता था। इतना अधिक अपने अन्दर रहने वाली, और साथ ही मेरे जैसा एक अत्यधिक एक्स्ट्रोवर्ट फ्रेंड चाहने वाली—इन दोनों बातों का कहां मेल बनता था मुझे कभी समझ में नहीं आया। मैं एक शतांश में भी उसके और मेरे काफी दिनों से चलते आ रहे परिचय में सन्तुष्ट नहीं था। कुण्ठाओं को अपने अन्दर जगह देते रहने से तो अच्छा था ऐसे सम्बन्ध को एकदम से तोड दिया जाता। मगर कमजोरियाँ आदमी से इतनी जल्दी अलग कहां होती हैं ? सरला से मैंने बहुत बार कह दिया था कि वह मुझसे मिलना छोड दे। मगर कुछ दिनों के बाद मेरा मन मुझे फिर उसकी तरफ खींच ले जाता और मैं कभी किसी ठंडी सुहावनी सुबह में यूनीवर्सिटी के पुस्तकालय में किसी पुस्तक में उलझी सरला से जाकर कह देता—' गुड मार्निंग ! हाउ डू यू डू, सरला !

या फिर वही स्वयं काफी दिनों की चुप्पी के बाद जब सहन-शक्ति का बांध टूट सा जाना, चुपचाप लाइब्रेरी के एक कोने में बुला कर मुझे कागज का एक मोटा सा पुलिन्दा पकडा कर ऐसे चली जाती, जैसे हम दोनों एक दूसरे के लिए बिल्कुल अजनबी हों और उस पुलन्दे का आदान प्रदान किसी अत्यधिक जरूरी कारणवश ही किया गया हो।

मैं सोचने लगता कौन सा रूप है मानव सम्बन्धों का यह जो न परिचय की सज्ञा मे आता है और न ही मैत्री की सत्ता में। कितना अनकन्वेंशनल है फिर भी कितना यथार्थपूर्ण है—कम से कम भारतीय को-एजूकेशन के सदर्भ में। विचारों से कितनी प्रगतिशील है आधुनिक भारत की विश्वविद्यालय मे पढने वाली यह नारी ! लेकिन,

सम्मुख मे किस वहूदे, दकियानूसी ढग से अभिव्यक्त होकर आती है। मानव सम्बन्धों का आखिर कौन-सा रूप है यह !

मैं नाहक ही चिड़चिड़ा हो उठता हूँ। मगर नाहक ही क्यों ? जो सम्मुख है, वह इतना दुरूह ही क्यों बना रहे ? यह चुप्पी यह रिजर्वनेस और मैत्री चाहते हुए भी साथ ही जान बूझ कर रखी गई इतनी दूरी। जब मैं उसे काट खाऊंगा। जैसे मैं आदमियों में से न होकर कुछ और ही हूँ।

मेरी झुंझलाहट मुझे दिन भर परेशान किए रखती है। सरला के चेहरे मे भी एक विवशता है जैसे वह चाहती बहुत है मगर उसे उस 'बहुत' मे से उपल[illegible] बहुत कम है। मैंने उसे बहुत बार समझा दिया है—'तुम्हारे और मेरे परिचय और मैत्री के बारे में लोग स्कैण्डल खड़े करते हैं। तुम डरती हो और डर कर फिर मुझसे कई दिनों के लिए अजनबी हो जाती हो। क्या यह सब तुम्हारा एस्केपिज्म नहीं है—एक पलायनवादी प्रवृत्ति जो महज आदमी के आत्म विश्वास की कमी को और बढ़ाती ही है कम नहीं करती ! और यह एस्केपिज्म भी ऐसे नाहक में खड़े किए स्कैंडल्स का हल थोड़े ही है। जब हम अजनबी रह कर एक दूसरे से आंख बचा बचा कर यहां निकलते रहेंगे स्कैंडल्स तो तब भी रहेंगे। क्यों न बोल्ड होकर स्वाभाविक रूप मे रहना सीख लेती हो।

मगर सरला क्या करे ? वह भी तो और लड़कियों की ही तरह एक हिन्दुस्तानी लड़की ही है।

सरला की इस विवशता से जो यहां उसके विश्वविद्यालय के जीवन में उसका चारित्रिक गुण सा बन गया है मुझे खीज होती है और मैं फिर आज तीसरी बार 'मयूर' में लगे दायरा में घुस जाता

हू। आखिरी दिन का दायरा' का यह सेकेंड शो।

कितना मार्मिक कहानी है। रूढ़िवादी समाज द्वारा खींचे गए दायरे से कहानी की नायिका और नायक, लाख ताबड तोड कोशिश करते रहने पर भी बाहर नही निकल पाते—ये दायरे कितने सत्य हैं! कितने कष्टदायी हैं! तब भी आदमी को कितने प्रिय हैं, प्रिय हैं तभी तो आदमी इनको छोड़ कर, इनको तोड कर इनसे बाहर नही निकल जाता है।

मेरा सिर और भारी होने लगता है और मैं बाहर निकल आने की सोचता हू तभी किसी परिचित से स्वर को सुनकर चौंक पडता हू जो शायद मेरे ठीक पीछे से आता है।

लगभग ८-१० सीटों की दूरी पर मैं देखता हू, सरला कितनी बफिक्र होकर इस अधेरे मे सिसकिया भर रही है जहा जोर से बोलना तक भी एकदम मना है। शायद उसका भावक मन कहानी की नायिका से अपना तादात्म्य स्थापित कर बठा है। उसके साथ का नायक उसे 'पागल' 'बेवकूफ' और 'बच्ची' जाने क्या क्या कह कर चुप करने की कोशिश मे है ताकि उसके अन्य साथ के दर्शकों की ओर से आरहे विरोध की मात्रा म कुछ कमी हो सके।

मुझे यह सब सह्य नही है। मै झपटकर बाहर निकल आता हू। मेरा सिर फट रहा है। मैं दिसम्बर की ठण्डी रात को एम आई रोड पर स्टेचू सर्किल की तरफ से घूमते हुए निकल पडने के इरादे से चल पडता हू।

मुझे याद आती है—एक निमत्रण की। राज्य के मन्त्री महोदय के यहाँ डिनर पर। घडी मे ८ बजे हैं। मै स्टेशन रोड की तरफ घूम लेता हू और रिक्शे के लिए हाथ खडा करता हूं। मेरे

सामने रिक्शे की जगह एक कार आकर रुक जाती है और जे ६६४६।

सरसा के नायक की कार ! सरसा के साथ वह भी दायरे के नायक की तरह है।

'किधर जाओगे अमित ! आ जाओ मैं छोड़ दूं।'

भागीरथ का ऊपरी दिखावटी प्रेम मुझ पर एक बिन मांगे उत्तरदायित्व के रूप में सवार होकर आता है।

'थक्यू ! भागीरथ ! थक्यू ! आई प्रेफर गोइंग आन फुट !'

'मनमनरती । भागीरथ के स्वर की घृणात्मक अभिव्यक्ति के साथ ही कार स्पीड पकड़ लेती है।

डिनर पार्टी—एक टिपीकल डिनर पार्टी की ही तरह, एक मिनिस्टराना डिनर पार्टी ! जो साढ़े आठ बजे शुरू होकर ११ बजे से पहले कभी नहीं छूटती। मंत्री महोदय का पी ए सभी अतिथियों का शुक्रिया अदा करते करते जैसे थक गया हो। मेरा मित्र होकर भी मुझ पर वो तवोज्जह नहीं रख सकता है वह जो यहां से बाहर रह कर उसके लिए सम्भव है।

'स र अमित ! बहुत लेट हो गये गो म ! आई एम वरी सौरी। स्पअर होती तो मिनिस्टर साहब की कार म भी ले चलता मगर अब तो शायद कोई बहुत पुरानी मिलने वाली आई हैं सो रात को उन्हें छोड़ने जायगी।

नेवर माइण्ड ! —कह कर मैं स्वयं दुमंजिले मकान के बड़े हाल में सीढ़ियों की तरफ चला आता हूँ। सीढ़ियों के बाईं ओर मिनि

स्टर साहब का बड रूम है। अहा शायद आज रात को उनकी मिलन वाली

मैं मिनिस्टर साहब को व्यक्तिगत रूप मे भली भांति छः सालों से जानता हूँ। व मिनिस्टर लोग

तभी मिनिस्टर साहब के बेड रूम म एक उन्मुक्त हास्य का स्वर वातावरण को चीरता हुआ निकलता है।

कितना परिचित स्वर है यह ! क्या सरला है ?

मिनिस्टर साहब का पी ए मेरे पीछे पीछे चला आता है।

रमन ! कौन है यह मिनिस्टर साहब से मिलने वाली ?'

अमित ! तुम शायद नहीं जानते उस। यूनीवर्सिटी मे एम ए म पढ रही है।

रमन को शायद मेरे घर के बहुत दूर होने की चिन्ता है।

अमित ! तुम मेरी साइकिल ले जाओ। मैं सोचता हू— सरला सान्याल ! एक तरफ इतनी रिजर्व नेचर कैसे दूसरी तरफ इतनी लूज कर हम सकती है ? मिनिस्टर जैसे भयकर व्यक्ति के पास रहने वाली लडकी एक चरित्रवान अमित स क्यो इतनी दूरी रख कर बात करती है ?

रिजर्वनेस उसकी विवशता है अथवा उसका चारित्रिक गुण ?

बिना बाप की इतनी गरीब सरला कैसे इतने अच्छे अच्छे कपडे पहनती है ?

सरला के चरित्र के सम्बध में यूनीवर्सिटी के मेरे मित्रों द्वारा गढ किय गए रोज के नए नए स्कैण्डल्स मे उसके चरित्र पर दोषारोपण

से अधिक, मुभम उनकी सहानुभूति का जा भाव है उसका आभास मुझे होता है।

बेचारा अमित !—

बेवकूफ अमित !

क्वाइस ए वन है मगर ये काल गन म वल इस्गा इन प्रास्टी

अब शायद मेरा मूड ठीक रहेगा। मुझे पता ही नही चलता बस में इतनी जल्दी घर पहुंच जाता हू ! ●●●

पाँच

द्मवी का चाँद पूरब म काफी ऊचा उठ आया है। उसकी रोशनी की किरणें बडी दर स मेरा ध्यान खीच रही हैं। और मेरा मन चाद जसी ही दूर किसी और जगह है। पता नही क्यों मरे की किसी भी चीज म मेरा मन नही है। साथ वाले कमरे मे पन दोस्तो के साथ बैठा भास्कर अपनी बथ डे पार्टी की चाय पी रहा है ौर सगीत की धुनें बार बार आ आ कर मरे दिमाग पर चोटें सी कर ही हैं। भास्कर क दोस्तो न जितनी बार भी आकर मुझे तन्हाई से खींच ले जाने की कोशिश की है मेरी झुंझलाहट और और बढती गई है। तन्हाई क सुख पर इतनी बजनाएं क्यो हैं। आदमी की सामाजिकता ही तो मूलत मानव मन की सारी कुण्ठाओ का कारण है फिर उन कुण्ठाओ से ऊब कर आदमी यदि कुछ समय क लिए अपने अ दर अकेला जाकर रहना चाहे तो क्यो लोग उसे नहीं रहने देते ?

मुझे खीझ होती है और मैं कमरे की सारी खिडकियां ब द करक दरवाजा लगा देता हूँ। दरवाजे क दाहिने हाथ की तरफ मेंटल

पीस पर रेडियो के पास पडी वीनस की स्मृति मुझे कचोटती है। सोचता हूँ—क्यों भी निशा ने मुझे यह संगमरमर की वीनस—गाडेस आव लव एण्ड ब्यूटी। निशा की वीनस के साथ मेरे और उसके पारस्परिक सम्बन्धों के ढेर सारे सन्दर्भ जुड़े हैं। कालिज के लिए वह और मैं साथ साथ आते हैं। क्लास में साथ बैठते हैं, पुस्तकालय में एक साथ बैठकर पढ़ते हैं। शहर के रेस्तराओं में देर देर तक बैठ कर चाय काफी आइस-क्रीम खाते हैं, लंच डिनर लेते हैं। सर्दियों की धूप में और गर्मियों की ठण्डी शामों में साइकिलों पर शहर के बाहर लम्बी लम्बी दूरियों तक घूमने जाते हैं। साल में दो दो बार अपनी वर्षगाँठें मनाते हैं भेंटें लेते और देते हैं। हेमन्त और लता के दर्दीले गानों को सुन सुन कर साथ साथ रोते हैं। कविताओं के मर्मस्पर्शी स्थलों को अण्डर लाइन करके एक दूसरे को देते हैं। सुबह उठने से लेकर रातों को सोने तक साथ रहते हैं। यही सब है जो अब रत्ना के सहवास की स्थिति में मुझे सहन नहीं होता। मेरे बेड रूम में निशा की यह वीनस मुझे रोज तंग करती है मगर तब भी मैं इसे फेंक नहीं देता। मैं ऐसे स्मृति के दास हैं हम सभी। निशा ने जब मुझसे कहा था—तुम्हारे सुनहरे रेडियो सेट के आबनूस वाले काले फ्रेम पर सफेद संगमरमर की यह वीनस खूब जंचेगी, अविनाश! रख लो! तो चाह कर भी उसे रोक नहीं पाया था। यह जानते हुए भी कि रत्ना इसे स्वीकार अपने घर में नहीं रहने देगी और बहुत सम्भव है अपने बेड रूम में इसे रखना कतई पसन्द न करे—मैंने निशा की आग्रह और अधिकार से लिपटी इस भेंट को चुपचाप स्वीकार कर लिया था।

संगीत की धुनें अब भी मेरे कानों में आ रही हैं। भास्कर का बलामसट बनर्जी वायलिन पर कुछ बहुत ही दर्दीली धुनें निकाल रहा है और मैं वीनस को पकड़ आत्म विभोर हुआ सा खड़ा हूँ, सुन रहा

हू दद के व स्वर मेरा हमदम मिल गया नजर बन गई है दिग्गे की जुदा न तुम हमे जानो न हम तुम्हें जानें ।—कितना दद है बनर्जी के स्वरो म उसकी वायलिन के तारो म । मुझे निशा की स्मृति फिर हो उठती है। मेरे दद को कितना पहचानती है वह। लेकि रत्ना ?

तभी रत्ना की चप्पलो की आहट मुझे होती है और वह मेरे कमरे म तजी स घुस आकर ढेर सारी चीजो के बडल सोफे पर फेंक कर खुद पलग पर एकदम स बिखरसी जाती है—'डार्लिंग ! देखो न, तुम्हारे लिए क्या क्या चीजें लाइ हू मैं। तुम्ह तो बस हमारी कुछ भी फिक्र नहीं है। आयन्दा से हम मस्त डार्लिंग को नही जायेंगे। समझे !' और अपनी काली काली आखो म मुझे ऐसे देखने लग जाती है जैसे मुझे नहीं मेंटिल पीस पर रक्खो वीनस को वह हमेशा देखा करती है। वाकई, मेरे सुखो का रत्ना कितना ध्यान रखती है। मैं पलग पर स उसे समेट कर अपनी बाहों म भर लेता हूँ और एक दो तीन चार पता नहीं कितनी बार उसे ! निशा का तरह रत्ना भी ऐसी स्थिति को निर्विरोध स्वीकार कर लेती है। बस निश्चल होकर मेरे प्यार को पीती रहती है, जैसे इसके अतिरिक्त उसे और कुछ भी नहीं चाहिए।

मगर तब भी मेरे पतित्व के प्रति रत्ना को एक गहरा असतोष है—कि क्यो उसका अविनाश रातो म उसके साथ ठीक से नहीं सोता बल्ब की रोशनी म घटों छत की तरफ एकटक ताका करता है न कुछ ! कि क्यों वह सुबह उसमे पहले ही उठ जाता है, कि क्यों वह उसे अपने पास बिठा कर उससे ढेर सारी उल्टी सीधी बातें नहीं करता कि क्यों शाम के वक्त जल्दी घर लौट कर वह उसे मिर्जा इस्माइल रोड की मरकरी और निओन रोशनियों स सजी दुकानों

वाले बाजार में अत्यधिक शानदार रेस्त्राओं में ले जाकर चाय नहीं पिलाता ? अविनाश में उसे सिर्फ एक पति ही तो नहीं चाहिए, कुछ और भी तो होना चाहिए। बात बात पर रूठने वाला, उससे झगड़ा करने और झगड़ा करके उसको मान मनोबल करने वाला एक प्रेमी भी अविनाश क्यों नहीं बन पाता है ? और रत्ना मुझे अपने साथ कस कर बांध लेती है। जब मेरा दम घुटने सा लगता है तो मैं कह देता हूँ— बस करो छोटी बहू ! बस करो।

छोटी बहू का यह सम्बोधन भी मैंने ही रत्ना को दिया है। शायद इस सम्बोधन के मर्म में कुछ सन्दर्भ हो। हां मुझे इतना अवश्य याद है, रत्ना से शादी करने से पहले ऐसा ही एक सम्बोधन बड़ी बेगम मैंने निशा को भी दिया था। घर में सब लोग रत्ना को इसी सम्बोधन से जानते हैं, यहाँ तक कि भाई साहब का सबसे छोटा लड़का राजीव भी अपनी चाची को इसी नाम से पुकारता है।

मैं अपने होठों को रत्ना के होठों से छुड़ाता हूँ। रूमाल निकाल कर पोछता हूं और तब पूछता हूं— तुम आज फिर प्याज खा कर आई हो छोटी बहू ! तो छोटी बहू एक बड़ी अजीब सी बात कहती है— शायद मैंने ही कभी कही हो उसे—"वन्स अ स्मेल्स द किस इज नॉट सव।" मैं चौंकता हूं— यह जुमला कितना जाना पहचाना है मेरा ! मुझे स्मरण आता है अपनी ही एक कहानी का जिसमें नायक नायिका से ऐसी ही एक स्थिति में यह बात कहता है। रत्ना मेरे चेहरे पर विस्मय के भाव देख कर, जोर से हंसती है तब कुछ ठहर-कर धीरे से कहती है— हमें छोटी बहू मत कहा करो डार्लिंग ! अच्छा नहीं लगता !

मुझे लगता है जैसे रत्ना इस सम्बोधन का विरोध नहीं

निगाह से देखती है। तभी तो नायक मेरा कुंठित मन 'बड़ी बेगम' के से नए नए सदर्भों की रचना करता है।

लेकिन इन सब बातों को गहराई से सोचने पर लगता है—आदमी की अपेक्षाएं कितनी असीमित हैं कितनी अनन्त हैं, और साथ ही कितनी अधिक आत्मिक (Subjective) भी हैं। अपने मन के पूर्वाग्रहों से वह कभी भी मुक्त नहीं हो पाता है। और यही सब है, तभी तो शायद उसके पारस्परिक सम्बन्धों में रोज नए नए सन्दर्भ बनते हैं मिटते हैं और फिर बनते हैं फिर मिटते हैं। उनको सही गलत जैसे जी चाहे तोड़ा और जोड़ा जाता है।

मुझे जहां एक तरफ छोटी बहू के असतोष का विचार आता है, वहीं दूसरी तरफ अपने उन सन्दर्भों का भी स्मरण होता है जिनके मूल में मानव सम्बन्धों का एक चिर शाश्वत, चिर जीवित, त्रिकोण है—रत्ना अविनाश और निशा। निशा रत्ना और अविनाश। अवि-नाश निशा और रत्ना। एक ऐसा त्रिकोण है यह जो जीवन के किसी भी प्रमेय (Theorem) को उसकी क्यू ई डी (Q E D) की स्थिति तक नहीं पहुँचाता। जिसमें ब अ के बराबर है, अ स के बराबर है। लेकिन तब भी ब और स कभी भी बराबर नहीं बनते। मानव सम्बन्धों के त्रिकोण की ये असंगतियां जीवन का कितना बड़ा यथार्थ हैं। जहां रत्ना की पत्नी का मन अपने पति अविनाश से एक अपरि-भाषित प्रेमी की भी अपेक्षा करता है, वहां निशा की प्रेमिका एक नैतिक (Moralist) अविनाश से एक पति की भी मांग करती है। अविनाश अकेला क्या क्या करे ?

मैं सारी स्थिति को ठीक से जान कर भी अपने मन को संतुष्ट नहीं कर पाता। मुझे लगता है, मैं पागल हो जाऊंगा। मेरा सिर फटने लगता है। मैं अपने आप में नहीं रहता। रत्ना चाय का

प्याला लाकर मुझे देती है। मैं झुंझलाहट मे उसे गिरा देता हूँ। मेंटल पीस पर रक्खी वीनस को जोर से फर्श पर पटक कर टुकड़े २ कर देता हूं और ट्रंक मे से अपने एलबम से दो चार पुरानी फोटुए निकाल कर उनको फाड़ देता हूं। रत्ना जोर से चिल्लाती है, चीखती है। घर के सारे लोग मेरे चारो तरफ इकट्ठे हो जाते हैं। पिताजी भास्कर से कहते हैं–कल हास्पिटल चल कर अविनाश को दिखाना पड़ेगा। और तब मैं चुपचाप बड़े रूम से निकल कर अपने ड्राइंग रूम मे चला आता हूं जहा के रेडियो सेट के ऊपर कोई वीनस नही है। जहा की सारी चीजें सम्पूर्ण रूप से रत्ना की हैं रत्ना के टेस्ट की हैं। उसी ने उन्हे खरीदा है। उसी ने उन्हे सजाया है। ●●●

लिए जो छोटी सी बात है वही यदि उसके पापा के सिर पर एक काला पहाड़ हो तो कोई क्या जाने? मार्था ऐसी छोटी छोटी बातों पर ही झुंझलाकर अपने पापा से पूछ लेती है— कब तक चलती रहेगी यह प्रदर्शनी? मैं तो आप लोगों की इस प्रदर्शनी में कोई म्यूजियम पीस बन कर ही रह गई हूं। इससे तो अच्छा है कि प्रोटेस्टेन्टों के अपने समुदाय में मेरी फोटो की सौ पचास कापियां करवा कर आप बस ही बांटें।" और ऐसा कहकर स्वतः ही मार्था के होठों की कोरें दोनों कानों की तरफ कुछ खिंच सी जाती हैं। वह पापा को सीधी खुली आंखों से देखने लग जाती है। पापा मार्था को ऐसे देखने लग जाते हैं जैसे मार्था एक फोटो हो। मगर जो बोलती हो वह फोटो कैसे हो सकता है? पापा कहते हैं— बेटी मार्था! फोटो से तो कोई शादी करता नहीं है न।'

शादी करने वाली मार्था एक है और उससे शादी करना चाहने वाले एक सौ एक या उससे भी कहीं ज्यादा। जब मार्था को कोई सहज समाधान नहीं मिलता तो उसे फिर झुंझलाहट होती है। वह पापा से मन ही मन पूछती है— क्या जरूरत है शादी करने की जब चौबीसों घंटे उसकी खैर-खबर करने वाले उसके बीसियों मित्र हैं। शहर में क्लब हैं, कैफे हैं, थियेटर हैं और इन सब के लिए एक स्वस्थ व स्वच्छन्द मन मार्था है। मगर अपने मन में सोची जाने वाली बात का पूर्वांश कहकर ही मार्था रह जाती है। असल बात पापा से कहने की उसे हिम्मत नहीं होती है। वह जानती है उसकी ऐसी किसी बात का पापा की तरफ से आने वाला जवाब— उन्हें अपनी मार्था बेटी के लिए उसकी खैर खबर करने वाले साथियों नहीं एक पक्का मित्र चाहिए जो उसका अपना हो। मार्था के बीसियों मित्र कभी भी मार्था को अपना नहीं रहने देना चाहेंगे जैसी वह आज है।

ग्रौर पापा फिर माया से एलक्जेण्डर सोलोमन की बात कहने लग जाते हैं। मगर उसे कहां फुरसत है उस सबको सुनने ग्रौर समझने की, जो हुआ नहीं है, ग्रब होने जा रहा है या हो सकता है। वह अन्दर जाती है और अपनी प्यारी बहिन मनो को मिल्क चाकलेट का एक सफेद मीठा सा चपटा पकिट दिखाकर अपनी रोजमर्रा वाली सांकेतिक भाषा में पूछती है आया वह हैड पोस्टमास्टर साहब से मार्था की कोई अपनी चिट्ठी लेकर आई है?

मनो आज भी चिट्ठी देने से पहले चाकलेट ले लेती है और तब एक हल्के नीले रंग का मोटा सा लिफाफा माया को पकड़ा कर बाहर की तरफ भाग जाती है जहां बरामदे में उसके पापा के पास बैठा वह टपाल वच का हैड प्रीस्ट फादर विसेंट उसके पापा से आज की राजनीति पर चर्चा कर रहा होता है। सारे देश में व्याप्त भ्रष्टाचार अव्यवस्था ग्रौर महगाई का सबसुलभ ग्रौर एकमात्र हल वह क्रांति में ढूंढता है। मार्था के पापा सोचते हैं—फादर विसेंट इतना युवा है तभी तो क्रांति की बात सोचता है तभी तो उस ग्राज की नई पीढ़ी की सुस्ती ग्रौर निष्क्रियता वाली आदतों पर आक्रोश होता है ग्रौर मार्था के पापा खूब जानते हैं फादर विसेंट के दिल की एक बहुत गहरी बात जो उसके समुदाय के एक दो आदमियों को छोड़कर और किसी को मालूम नहीं है कि हर हफ्ते रविवार को होने वाली प्रेयर के समाप्त हो जाने के साथ ही वह हमेशा ही बाद में कुछ नवयुवकों ग्रौर नवयुवतियों को ठहर जाने के लिए कह देता है जिनमें उनकी अपनी मार्था भी होती है। विसेंट के विषय में मार्था ने अपने पापा को ग्रौर भी कई बातें बताई होती हैं कि फादर विसेंट में देशभक्ति कसी कूट कूटकर भरी है, कि वह एक कट्टर मानवतावादी है जो प्रेयर के बाद वाली मीटिंगों में रोज ही अण्डरग्राउण्ड क्रांति की बातें किया करता है।

वही अन्दर बैठा बैठा बम बनाया करता है और अपने सभी सहयोगियो को ठीक निशाना साधने की ट्रेनिंग भी दिया करता है। सरकारी अफसरो और नेताओ को खुन आम गालियां देता हुआ विसेंट कहता है— सबने मिलकर बचारे महात्मा को खा डाला। नेहरू को भी चाट गए। राक्षस कहीं के। नगे भूखे भेड़िए। विसेंट कभी कभी तो बस एकदम ही बिलख उठता है अपनी बात कहते कहते।

पापा समझते है मार्था की भावुकता को। छोटी छोटी बात भी उसे कितनी जल्दी असर कर जाती है। उन्होने तो यह सब जानते बूझते हुए भी अतिरिक्त रुचि लेकर कभी भी फादर विसेंट को समझाने की चेष्टा नही की है। उनके लिए तो विसेंट भी वैसा ही एक साधारण सामान्य व्यक्ति है जैसे आज की दुनिया में सैकड़ों हजारों होते हैं। और इस उम्र में तो आदमी अपने से बाहर कुछ अधिक ही रहता है। फादर विसेंट सच का पादरी है तो क्या हुआ है तो इसी उम्र का। और उसके उनके यहां आने जाने उठने बैठने और बोलने में भी भला मार्था के पापा को क्या एतराज हो सकता है। प्रत्युत पापा के मन मे प्रत्यक्ष या परोक्ष ऐसी भी कोई बात काफी दिनो से जमी बैठी है कि मार्था को फादर विसेंट से मिलना ही चाहिए उससे मेल मुलाकात बढ़ानी ही चाहिए—शायद यों ही चाहिए उससे मेल मुलाकात जाए। यही कारण है तभी तो शायद माथा के पिता हर काम को विसेंट को चाय पिलाते हैं वर्तमान राजनीति के मसलों पर उसकी सम्मति से सहमति प्रगट करते हैं। वैसे पता नहीं मार्था भी फादर विसेंट मे उसी दृष्टिकोण से रुचि लेती हैं अथवा नहीं?

मार्था को अपनी बातो ही से कहां फुरसत है? उसकी पत्री ही उसका पूरा दिन भर यों ही खा डालती है। और शाम को अपने इधर उधर के सारे कामों से निपट कर थकी थकाई मार्था जब घर लौटती है

तो उस देखकर एक बार तो उसके पापा भी थक जाते हैं उन्हें लगने लगता है जैसे वे अब बूढ़े हो गए हैं, उनके हाथ पैरों में दर्द रहता है, और उन्हें भी हर सुबह दोपहर, शाम और रात का चार चार घण्टों के बाद किसी अच्छे टॉनिक की तरह अपनी बेटी के हाथ की बनी गर्म चाय की तलब रहती ही है। और अपनी ऐसी स्थिति में वे चाहकर भी अपनी प्यारी बेटी को कुछ हल्की भारी बात कह सुन नहीं सकते। उस यह भी नहीं बता सकते कि धीरे धीरे उसके चेहरे की चमक धुंधली पड़ती जा रही है कि हर सुबह सूरज की पहली किरण के साथ ही जब वे उठते हैं तो मार्या को देखकर उन्हें लगता है जैसे बीते हुए कल की अपेक्षा आज उनके सिर का भार थोड़ा और बढ़ गया है कि हर शाम दिन ब दिन उनकी माया अधिकाधिक गम्भीर और प्रौढ़ होती जा रही है। और तब वे फिर एक गहरी तन्हाई में डूब जाते हैं। और तब फिर रोज की तरह ही माया भी उन्हें बिना कुछ कहे सुने ही अपने साड़ी के पल्लू और सीने के उभार की तरफ देखते हुए अपना पोर्टफोलियो संभालती हुई चली जाती है, जिसमें हमेशा ही उसके कुछ व्यक्तिगत पत्र होते हैं, रातों में लिखे गए उन पत्रों के जवाब होते हैं

एक छोटी खूबसूरत सी डायरी होती है जिसमें कुछ लोगों की जन्म की तारीखें होती हैं पीछे की तारीखों पर लिख लोगों से लिए उनके अप्वाइंटमेंट होते हैं और होते हैं—साहिर या अमृता के तीखे और तल्ख इन्किलाबी शेर, नज्म और गजलें, जिन्हें शादीशुदा या गैर शादीशुदा हर जवान लड़की चाहती है। और इसके अलावा भी उसके उस छोटे से पोर्टफोलियो में बन्द होती हैं मार्या की गर्म ठण्डी कुछ साँसें जो थाकई में अपना वजूद सिद्ध करती होती हैं। जो उसकी तनहा जिन्दगी की एक सच्ची वसीयत होती हैं। काफी दिनों के बाद उसका यह पोर्टफोलियो जब उसकी गर्म ठण्डी साँसों से ऊपर तक भर जाता है तो

उससे एक चेहरा बनता है जो हमेशा ही किसी एम हेमन्त का होता है जो बचपन मे उसके साथ खेला है किशोरावस्था म उसके साथ पढ़ा है यौवन मे उसके साथ वन प्रा तर देश विदेश घूमा फिरा होता है और आज जब उसे उसकी बहुत ज्यादा जरूरत है उससे दूर हो गया है—एक चकवा। अब तो उसकी जि दगी की ओर हो गई है अब तो उसे अपनी चकवी क पास लौट ही आना चाहिए। मगर आज मार्था जहाँ है उस दिशा म तो हेमन्त क कान भी नहीं हैं। वह कस सुने अपनी चकवी के मन की पुकार? मार्था को रिसेप्शनिस्ट अपनी फक्ट्री के काउण्टर पर बैठी दिनभर म पता नहीं कितन भीड सारे आदमियों के चेहरे और पीठें देखती है। उसकी कुलिया मुस्कराहटें दिन भर मे पता नहीं कितन दिलो को बोंदती है, छेदती हैं या अन्दर तक टाच देती हैं, मगर उन बीसियो पचासो या सकडो चेहरो मे मार्था को कभी भूल कर भी कोई एसा चेहरा नजर नहीं आता जिसका नाम वह हेमन्त रख सके। मार्था को जब हेमन्त याद आता है तो उसके साथ ही नई पुरानी उसकी अनगिनत बात उसका सलीका उसका व्यक्तित्व और सबसे ज्यादा उसका आत्मविश्वास और जिद्दी स्वभाव भी याद आ ता है, जिसने हमेशा ही मार्था को अपने अनुकूल काम करने को बाध्य किया होता है।

अपने मन के उस किसी हेमन्त को लेकर भी जब मार्था शहर के बीच म उसके हलचल और भीड भडाके मे पहुँचती है तो उसे सब कुछ भूल जाता है। याद रहता है सिफ माग म मिलने वाले परिचितो के अभिवादनो का एक अजीब सी बेरुखी बेफिक्री से उत्तर देना। ऐसे परिचितो मे सफेद बाल वाला एक परिचित भी पाक हाउस क पास एक बड़ी दुकान क बरामदे म खड़ा रोज ही उसकी प्रतीक्षा किया करता है। अपने मन म जमी उमी ढर सारी समस्याओ के साथ जिनका

हल मार्था ने कभी भी विसेंट के साथ एकात्म होकर नहीं सोचा है।

आज भी एक पखवाड़े के बाद जब मार्था हेमन्त के नैनीताल से लौटकर आई है और अपने काम पर जा रही है तो उसे फिर इन्कलाब और भावनाओं का वह मसीहा दिखाई देता है जिसके अन्दर एक आग सुलग रही है—बगावत की, देशप्रेम की। मार्था उसके पास पहुँचती है इससे पहले ही विसेन्ट कुछ कहना शुरू कर देता है जो एकदम से मार्था की समझ में नहीं आता। आज फादर विसेन्ट बहुत बेचैन हैं शायद। मार्था कहां चली गई थीं तुम इतने दिनों तक ?' विसेन्ट कहता है मुझे तुम्हारी बहुत जरूरत थी। कितना ढूंढा है मैंने तुम्हें ?

'फादर विसेन्ट ! मैं भी किसी को ढूंढने ही गई थी हेमन्त के नैनीताल। मुझे पता चल गया है वह इसी माह के अगले हफ्ते ही जर्मनी से लौटकर आ रहा है उसकी ट्रेनिंग पूरी हो गई है। फादर, आज मैं बहुत खुश हूं। स्वदेश लौटकर हेमन्त मुझसे शादी करेगा। उसने अपने मां बाप को भी इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखा है। मैंने उसका कितना इन्तजार किया है अब तक ? और बिना यह सोचे समझे ही कि विसेन्ट का ध्यान उसकी बातों की तरफ कतई नहीं है मार्था कहे जा रही है पता नहीं कितनी बातें एक साथ जिनमें माथा के हेमन्त से हुए परिचय का इतिहास है जिनमें हेमन्त की आदतों उसके सलीके और अच्छाइयां बुराइयों का एक विस्तृत ब्यौरा है। मार्था भूल जाती है कि जहां वह जोर जोर से ऊंचे स्वरों में फादर विसेंट के सामने अपने मन की अनाम निशानी रखी है वह एक आम सड़क है। और ऐसी आम सड़कें निहायत आम बातों और आम लोगों के लिए ही हुआ करती हैं। फादर जैसे गम्भीर रहस्यमयी लोगों और मार्था जैसी

हल्की फुलकी औरतो के लिए नही । नायद इसी लिए विस ट माथा को उसकी बायी बाह स पकड कर पास हो के एक छोटे से तग और (उन दोनो के दृष्टिकोण स) निहायत गदे चायखाने म ले जाता है जो दोपहर के काम क घण्टो म हमेशा खाली रहता है जहा विसेंट नियमित रूप से अपन मित्रो से मिलता है और रोज उन्हें अपनी नई नई योजनाएँ समझाया करता है। और नायद यही कारण है कि नहर की बडी २ मिलों मे आए दिन ताल लगते हैं। पिकेटिंग होती है, और मारपीट क वाक्य सुनने म आते हैं। विस ट मार्था को समझाना बहुत कुछ चाहता है मगर पता नही आज भी क्यो वह रोज की तरह ही मार्था क सामन चुप है। वह उससे इतना ही कहता है कि उसे भी उन लोगो का सक्रिय सहयोग करना चाहिए जो आज देन की भुखमरी व भ्रष्टाचार मिटा कर एक ऐस नए समाज की रचना करना चाहते हैं जो एक सुखी और समृद्ध समाज होगा। बार बार एक ही बात जो विसे ट मार्था को कहता है वह है मार्था न अपनी वेंसमनीन उत्पादक फक्ट्री क मजदूरो का सगठित करने की। मार्था की मुस्कराहट अगर विस ट क लिए अपनी फक्ट्री क डेढ सौ मजदूरो को सगठित करके उस ओर नही सकती तो फिर मार्था क्या है क्या है और क्यों है? बहुत ही सवाब के साथ तब विसेंट कहता है—' मार्था ! तुम मेरे लिए एक स्त्री नहा हो मेरी एक योजना हो मेरे सगठन की एक इकाई हो। सुगर फक्ट्री की रिसेप्शनिस्ट पालू टक्कर को मैंने समझा दिया है—२७ तारीख को लच टाइम म जब सब मजदूर कारखान से बाहर होगे तब कारखान की एक एक ईट बिखर जाएगी। उसी दिन कपड की मिल म और कलक्टर क दफ्तर म भी यही सब होगा, जिसके लिए मिस बेंजामिन और राजाराम नोनो का पूरा पूरा सहयोग मुझे प्राप्त है। तुम जानती हो हमारे इस बान्द्र डिस्ट्रिक्ट के पाकिस्तानी

कनक्टर की काली करतूतें। बस तुम्हारी फक्टरी का ही थोडा सा काम बाकी रह गया है। मैं जानता हू कि तुम भी अपनी फक्टरी मे बहुत लोकप्रिय हो। पसिनीन फक्ट्री मे सिस्टर मार्था को कौन नहीं जानता ? तुम वहा सब मजदूरो और कमचारियो को ठीक स समझा दो। परसो टोवन स्टान्ड हाकर तन मन स्टान्क और तब परसो न तारीख को पसिनीन की तुम्हारी फक्टरी म भी वही एकदम होना चाहिए । तुम जानती हो कितनी मिलावट है तुम्हारी फक्टरी के इजक्शनो मे। जो औषधि प्राणोषधि है उसी म यदि चूने का पानी या उसका चूरा मिला हो तो मृत्युशय्या पर सोया बीमार कसे बच सकेगा ? जहा एक तरफ तुम मुझसे मेरी इस योजना म सहयोग करोगी वहाँ शहर म दूसरी तरफ खाद्यान्नों की दुकानें लूटी जायेंगी। सरकारी दफ्तरो म पत्थर फके जाएग और यहा वश आगजनी की भी कुछ वारदातें होगी। अब समय आ गया है मार्था ! हमे इस नबके लिए अब एकदम तयार रहना चाहिए।

विमन्ट की रोज की नई नई बात सुनकर मार्था गडबडा जाती है। उसे समझ म नहीं पडता, आया विमन्ट कोई कम्युनिस्ट है या फिर सच्चा देशभक्त ? या फिर देशभक्त कम्युनिस्ट का ही एक नया संस्करण। कभी कभी तो जब वह ऐसी ऊटपटाग सी बातें करता है तो उसके एक कट्टर अराजकतावादी होने की बात भी मार्था क दिमाग म आती है। मगर विमन्ट जब बार बार इसी बात पर जोर देता है कि उसके देश का हर इन्सान खुशहाल और स्वतन्त्र होना चाहिए तब ही वह किसी भी कीमत पर क्यो न हो तो फिर मार्था को उसकी बात का सही अथ समझ में आने लगता है। प्रेम और व्यक्तिगत सुख भले ही मार्था की दो बडी कमजोरिया हो देशप्रेम निश्चय ही उसके मन की एक सच्ची साध है जिसे वह अपने तन मन और धन हर तरह

पूरी करने की महत्वाकांक्षिणी है।

और जब विसेंट के स्वर में एक प्रवाह आ जाता है तो व पने लगता है कभी ल्न प्रेम की भाषा में रोने लगता है, तो कभ वह ऐसा चुप हो जाता है कि माया को उसे हा कहने के अलावा और कुछ न ी सूझता। उसकी बात सुनकर माया को भी कभी कभी लगने लगता है जस विसेंट की आत्मा की आवाज को उसे एकाग्र कान लगा कर सुनना चाहिए। और तब सच ही वह एक स्त्री नहीं रहती विसे ट की एक योजना उसके सगठन की एक इकाई म बदलन लग जाती है। उस अपनी फक्ट्री क वक्त का विचार नहीं रहता। पर बठे अपन पापा और मनी को भी कुछ समय क लिए वह भूल जाती है। और भूल जाता है उसे हम न भी जो वर्षों से उसकी आत्मा उसके शरीर क पोर पोर म गहरा बसा हुआ होता है माया जिसकी सास सास से जो रही होती है।

और एसी स्थिति म जब मार्या तकटक विसेंट को ही देखती रहती है तो लगता है जस वह माया नहीं मार्या का बुत है—जो सुनता भी है महज देखता ही है। विसेंट तब थोडा और आग बढकर देश की गरीबी भुखमरी, अनतिकता की वतमान स्थिति भी उसक सामन रखता है। वह बगाल क उस एतिहासिक दुर्भिक्ष की बात भी करता है जब अत्यधिक सकट होने पर भी देश म सायास इतना महगा नहीं हुआ था। महगाई और अनतिकता की आज की सी स्थिति पहले या दूसर विश्वयुद्धो के समय भी कहा थी ? अभावो की आज वाली अवस्था तो तब भी न थी जब देश का शासन, द्रव्य और उत्पादन भी अपना नहीं था। तभी तो स दर्भों म विसेंट जब मार्या म क्रान्ति की बात करता है तो यह भी स्पष्ट कर देता है कि माया ! बस यही एक माग है जो हम सुख और समृद्धि द सकता है—क्योंकि वह

स्वय भी ठीक से नही कह सकता ? वैसे वर्तमान काल के इतिवृत्त को जो एक तटस्थ भावना से समझा जाय, तो आज का मनुष्य अपने इस देश के सन्दर्भ में ऐसी किसी क्रान्ति की बात को ही एक सहज हल के रूप में प्राप्त करता है। आज के इतिवृत्त के सन्दर्भ में ऐसी हिंसा और हत्या ही अनिवार्य और उपादेय मालूम पड़ती है। आज जो ऊहापोह, जो द्वन्द्व और हलचल हर आदमी अपने अन्दर अनुभव करता है वही नैतिक लगती है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह या तो आत्म छलावा है या फिर मनुष्य की एक स्पष्ट दुर्बलता।

मार्था विसेन्ट को वादा देती है सहयोग का, और तब विसेन्ट इस सम्पूर्ण क्रिया की योजना (प्लान आफ एक्शन) समझा देता है। विसेन्ट से मुक्त होकर ही तब मार्था अपने आप में आती है, अनर्गल बातों को भूलती है और अपने जरूरी कामों को फिर से याद करती है। एम्पायर स्टोर्स में जाकर हेमन्त के मित्र गोविन्द शर्मा से उसके समाचार पूछती है। वह मार्था को मिलकर बहुत खुश होता है, उसे सूचना देता है हेमन्त के एक पत्र की जिसमें उसने जर्मनी से स्वदेश लौटकर यहां के अपने एक बहुत ही सीमित समय के संक्षिप्त से कार्यक्रम के बारे में उसे लिखा होता है। उसी संक्षिप्त कार्यक्रम में मार्था से सिविल मैरिज करने का भी एक आइटम है जिसके लिए शर्मा मार्था को बधाई देता है। हेमन्त ने शर्मा को लिखा होता है कि वह मार्था को इस सब की सूचना फिलहाल इसलिए नहीं देता है कि अन्यथा वह इस सूचना का सुख नहीं भोग सकेगी। शादी करने के बाद कुछ दिन स्वदेश रहकर हेमन्त अपनी उच्चतर ट्रेनिंग के लिए मार्था को भी अपने साथ अमेरिका ले जाएगा। इसके बाद जब वे दोनों लौटेंगे तो उसकी मार्था अभी की तरह अपनी फैक्ट्री की रिसेप्शनिस्ट ही नहीं रहेगी वह लम्बी चौड़ी साफ सुथरी किसी फैक्ट्री के मालिक या मैनेजर की पत्नी

होगी। उसकी कारें होंगी। एक दो बंगले होंगे। चौबीसों घंटे उसकी सेवा के लिए उसके नौकर होंगे।

हेमन्त के मित्र गोविन्द शर्मा की इन सूचनाओं में मार्था फिर खो गई है। मार्था को दुःख है तो बस एक बात का कि उसके सुख के ये क्षण अभी क्यों नहीं हैं? भविष्य तो सभी के लिए ऐसा ही सुन्दर, मादक और सुखद होता है या हो सकता है।

और जब मार्था के मन की व्यग्रता बहुत अधिक बढ़ जाती है तो वह रोज की अपेक्षा आज जल्दी ही फैक्ट्री की तरफ न जाकर बड़े डाकखाने की तरफ चली जाती है। डाकखाने के हैड पोस्टमास्टर अकल बाबू मार्था को देखकर बहुत खुश होते हैं। उसकी और उसके पापा की कुशलक्षेम पूछते हैं तब आलमारी से एक पार्सल निकालकर देते हुए कहते हैं—'बेटी मार्था! रोज सोचता हूं शाम को तुम्हारे पापा से मिलने आऊंगा तो यह पार्सल तुम्हें दे दूंगा। मैंने मंगाकर ही अपने पास रख लिया है इसे। जर्मनी से हेमन्त ने तुम्हारे लिए कोई सौगात भेजी है क्या?

और तब एक बार फिर पापा की कुशलक्षेम पूछकर मार्था को विदा कर पोस्टमास्टर अकल बाबू ठप्पा लगाए फार्मों में कुछ लिखने लग जाते हैं। मार्था पार्सल लेकर लौट आती है। उस दिन शायद वह बहुत अधिक खुश है तभी फैक्ट्री की छुट्टी लेकर वह घर चली आती है।

हेमन्त ने अपनी मार्था के लिए ढेर सारी सौगातें भेजी होती हैं कुछ कपड़े एक पाकिट ट्रांजिस्टर सेट और और भी तरह तरह की कई अन्य चीजें। उसे उन सबको अच्छी तरह देख लेने की भी फुरसत

नहीं है कपडे मे लिपटे लिफाफे म ही जसे उमका सब कुछ है। वसे हेम त की उस चिट्ठी में वही सब बाने ही तो होती हैं जो मार्था ने उसक मित्र गोविन्द की चिट्ठी म अपन लिए दमी होती हैं। मगर तब भी प्राज इस चिट्ठी स माथा को शर्मा की चिट्ठी की अपेक्षा अधिक सुख है। आज उसका रोम रोम बोलना च हता है। उसे लगता है जसे उसे अपने मन की बात अच्छी तरह खोलकर किसी को कह देनी चाहिए। उसे सामने स आती हुए फ्रेनी दिखाई पडती है। वह जब अपनी दीदी स चाकलेट मागती है तो माथा एकाएक ही फ्रेनी को कधो से पकड कर आगन मे एकदम घूम जाती है तब अपनी बांहो मे भरकर उसे जोर जोर से चूम लेती है—एक, दो तीन, पता नही कितनी बार। फ्रेनी को जब कुछ समझ म नहीं आता तो वह हडबडा जाती है, थोडी शक्ति लगाकर अपनी दीदी के ब धन से मुक्त होती है और एक तरफ खडी होकर एकटक उसे देखती रहती है कुछ ऐसे जैसे उसकी दीदी मार्था पगला गई हो। पापा भी अन्दर कमरे म बठे माथा का यह नाटक देखते हैं तो बाहर आकर पूछते हैं— क्या बात है?

मार्था होश म आती है और सयमित होकर पापा से हैड पोस्टमास्टर अकल बाबू की सारी बाते कह देती हैं ज्यो की त्यों बस एक हेमन्त वाली बात को पचा जाती है। जब पापा को समझ मे नही आता अपनी मार्था क एसे अतिरिक्त हर्षोल्लास का कारण तो वे यो ही 'पगली कही की' कह कर वापस कमरे में लौट जाते है।

उस शाम के पूरे चार घटो तक माथा घर से बाहर रहती है। घर लौट कर खान पान स निवृत्त होकर जब रेडियो से रात की खबरें वह सुनती है तो यकायक उसे अपने कानो पर विश्वास नहीं आता। एक बार फिर देश के उत्तरी पश्चिमी कोने में आग लगी है। आग लगाने वाले वही पुराने आस्तीन के साप होते है जिन्हें वर्षों तक

रहते हैं, और दूसरे दिन जब सुबह होती है तो सूरज की पहली किरणों के साथ ही मार्था पास ही के एक रिक्रूटिंग दफ्तर में जाकर उन सैकड़ों के साथ एक अपना नाम भी लिखवा आती है जिनके अन्दर इन्कलाब होता है मगर शोर नहीं होता। जिनके अन्दर एक कसमसाहट और तड़पन भी होती है मगर ऐसी तड़पन होती है वह, जो कि एक अकेले आदमी की न होकर उन सैकड़ों की होती है जो आज अपने वतन के लिए युद्ध करना चाहते हैं। ●●●

आज की डेढ़ घण्टे की चाय और बहस के बाद ही से रमण (शायद) हमेशा के लिए मीरा से 'गुडनाइट' कर आया था। झगड़ा कोई नहीं हुआ था दोनों के बीच झगड़ा होने का कोई कारण भी नहीं था, मगर महज मान्यताओं के अन्तर के कारण ही पिछले दो ढाई सालों के गहरे सम्बन्ध आज यों इतनी आसानी से तोड़ दिए गये थे। इधर एक तरफ रमण शीघ्रता में उठाये गये अपने इस कदम को यथोचित ठहराने के लिए मन ही मन डूब रहा था, उधर दूसरी तरफ मीरा को भी रमण की इस बात पर विश्वास ही नहीं होता था कि रमण जैसा बुद्धिजीवी भी महज मान्यताओं के अन्तर के कारण ही हमेशा के लिये इतने अच्छे सम्बन्ध ऐसी आसानी से तोड़ गया। प्रश्न सिर्फ वाद विवाद का ही तो था।

अपने काम से लौटते हुए सारे रास्ते भर मीरा यही सोचती चली आ रही थी। निरी भावुकता में पड़ी हो गई व्यर्थ की इस परेशानी में उसका सिर दर्द करने लगा था। वह कोशिश करके भी आज भी इस सारी घटना में अपनी तरफ से की गई या अज्ञान में हो गई कोई ऐसी गलती नहीं ढूंढ पा रही थी जिससे रमण को यह सब करने को बाध्य होना पड़ता अथवा उसे ही और दिनों की भांति माफी आदि मांगने की जरूरत पड़ती।

घर आई तो किसी भी काम में उसका मन नहीं लग पा रहा था। वह सोच रही थी—रमण भावुक है जरूर, मगर बुद्धिवादी पहले है। उसने आज तक कभी भी मीरा के भावुकता या आवेश में किये गये किसी काम को सराहा नहीं है। तब स्वयं कैसे इतनी अधिक भावुकता में बहकर वह सब कुछ कर बैठा है जिसका दोनों में से किसी को स्वप्न में भी भान नहीं थी? मीरा ने अपने पापा के बहुत आग्रह करने और अत्यधिक थके होने के बावजूद भी चाय नहीं पी। उसकी

तबियत के बारे म पूछने पान वाली अपनी छोटी बहिन को भी नाराज कर अपने कमरे से बाहर निकाल दिया और और दिनों की तरह अपने मित्रों के फोन पर आने वाले बो म म ग फव को भी रिसीव नहीं किया।

उसे लग रहा था—थोड़ी र रो लेती तो शायद उसका जी हल्का हो जाता। मगर कारण क्या था रोने का वह समझ नहीं पा रही थी। मीरा सोचने लगी—यह र मत्री का अंततोगत्वा यही परिणाम है या फिर सभी मित्रियों के नाम पर बुभाषा के नए नए साधन जुटाने की भाव बकता क्या है ? अपनी मित्रियों के अब तक सभी पुराने सम्भ एक बारगी उसकी आंखों के सामने ह के सपनों से तर गए। प्रि स जयबहादुर सिंह डाण्ड। राजीव रिसर्च स्कॉलर — ड्राप्ड। मातादीन—आर्टिस्ट पोएट ड्राप्ड। और अब रमण शाह—नावलिस्ट ड्राप्ड नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता। उसे बार बार रमण के श र याद आ रहे थे— मीरा ! मैं कभी तुम्हारा मित्र था, अब तुम्हें प्रम करता हूं। मैं तुम्हारे और मित्रों की ही तरह तुम्हारा भाई साहब या फड रहते हुए ही तुम्हें प्रेम नहीं करना चाहता कारण कि प्रेम निश्चित रूप से एक दूसरे से शारीरिक संतुष्टि की मांग करता है। प्रेम का अस्तित्व ही देह की कल्पना से है मगर मीरा ! तब भी मैं तुमसे कभी भी एक ऐसे अन-लिक प्रेम की अप ा नहीं करूंगा जिसके कारण आज तुम्हारा मन धीरे धीरे आदमी की सारी जात से घृणा करने लग रहा है। तुम प्रेम को वासना समझती हो इसीलिए ऐसी मित्रता ही तुम्हारी कल्पना में आदर्श सम्बन्धों की अभिव्यक्ति है उससे आगे शायद और कुछ नहीं है। मैं प्रेम को वासना अवश्य मानता हूं मगर जीवन की इस यथार्थ और मूलभूत आवश्यकता के प्रति सजग हुए बिना आदमी रह नहीं सकता।

जीवन की इस मूलभूत आवश्यकता के प्रति भी जो विवकशील है वही नतिक प्रम की बात समझ सकता है अयथा तो प्रेम वासना है ही मीरा ! उम दृष्टिकोण से यदि हम दोनो तुम्हारी वाली 'मित्रता' के साथ साथ मरे वाला प्रेम भी कर सकें मरी माग के प्रति तुम सहज रूप से उत्तरदायी (रसपासिव) हो सको तब तो ठीक है अयथा इसक अतिरिक्त फिर प्रेम या मत्री के नाम पर चलने वाली एक लम्बी कुण्ठा पाल रखन मे क्या अथ हो सकता है ?'

डेढ़ घटे की लम्बी बहस क दौरान रमण की इन बाता म मीरा को अवश्य ही उसकी भावुकता मे भी बुद्धिवादिता की झलक मिली थी मगर वह इस सब का जवाब क्या देती ? रमण के सामने बठी वह सोच रही था— क्या एसो बातो के जवाब भी होते हैं ? यदि नही तो फिर रमण इतना साधारण मानव होते हुए भी साथ ही एक आदश मानव क्यो बना रहना चाहता है ? वह समझता क्या नही है ? उसको मीरा के लिए यह बात जरूरी क्यों हो जाती है कि वह उसकी ऐसी नकाओ का कोई मौलिक उत्तर दे ही ? उसे अपने प्रेम पर विश्वास क्यो नही है ? उस मीरा की मत्री वाली बात का मम समझ म क्यो नही आता है ? रमण इस डर स ही क्यों आदशवादी बना रहना चाहता है कि उसके द्वारा मीरा स स तुष्टि की माग करने पर मीरा अपने और मित्रो की तरह उसे भी चरित्रहीन कहेगी, कि उसमें भी हमशा क लिए अपने अच्छे सम्बन्ध तोड लेगी ?

मीरा एक सतक नारी है अवश्य लेकिन वह भी तो एक नारी है— जिसक पास तीस साल पुराना हाड मास का एक शरीर है, एक छोटा सा महत्वाकाक्षी मन है।

उसने बिस्तर से उठ आकर रमण से कांटक्ट' करने के लिए फोन पर डायल किया रमण की मकान मालकिन, और पडोसिन

सुनीता ने, मीरा को फोन पर लौटाकर सूचना दी थी कि रमण घर पर नहीं था।

रमण रास्ते में ही एक कफे में रुक गया था। अपने सामने नाचते रंग बिरंगे जोड़ों में उसे कठपुतलियों की शक्लें नजर आ रही थी। एक दूसरे की कमर में हाथ डाल कर जाज की उठती गिरती धुनों के साथ थिरकते परों में, उसे एक मशीनी सभ्यता का आभास हो रहा था। नारी अपने आप में एक कितना बड़ा छल है—प्रवंचना की प्रतिमूर्ति। बड़े हाल में डांस करती हुई पार्टनर में उसे हिंदुस्तानी मीरा (भले ही वह क्रिश्चियन पारसी या फ्रेंच हो) दिखने लगी थी जो ऐसे हर प्रेम के विचार मात्र से ही बिफर जा सकती थी जिसका अस्तित्व देह की कल्पना से है जिसे कमर में हाथ डालकर संगीत की धुन के साथ थिरकने वाली ऐसी हर मैत्री से आसक्ति थी जो स्वयं में एक यथार्थ नहीं थी लक्ष्मण-रेखाएं बांध कर कब तक मन के शाश्वत और चिर जीवित रावण को रोका जा सकता है? वह सोचने लगा था—मीरा की वह मैत्री क्या थी, जिसके एक दिन जबकि उसके भाई ने उन दोनों के प्रेम सम्बन्धों का विरोध किया था वह सिसकियां भर भर कर रोई थी। रोते रोते ही रमण से उसने कहा था—'रमण! शान्ति की बात का बुरा मत मानना सारा दोष मेरा ही है जिसकी वजह से तुम्हें परेशानी हुई है मगर प्लीज! भगवान के लिए और मेरे लिए तुम इस सब का बुरा मत मानना मैं तुम्हें चाहती हूँ तुम्हारी मित्रता के बिना मीरा जिन्दा नहीं रह सकती। तुम मेरे मित्र हो और हमेशा २ रहोगे

रमण ने बस तो उसे सांत्वना दी थी और बुरा न मानने का भी वायदा भी मगर उसे मीरा की मैत्री का कोई रूप भी एक स्पष्ट धोखा दिख रहा था। मीरा के जीवन का यह ढंग उसकी दीवानगी

विवशता अथवा आवश्यकता हो सकती थी ? यहाँ न कि एक विजातीय रमणी को ग्रहण करना यदि उसके लिए असम्भव नहीं तो कठिन जरूर था, कि रमणी को पाने के लिए उसे सम्भवतः अपने पूरे परिवार से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना होता था।

रमण बफे से उठ आया। सड़क की भीड़ में या तो वह अपने आपको खो देना चाहता था, या फिर एकदम उससे ऊपर उठ कर सीधा घर पहुँचना चाह रहा था। मीरा को अब वह भूलना चाहता था मगर उसे हर क्षण हर चेहरे में मीरा नजर आ रही थी। बंगले के कम्पाउण्ड में आकर अपना कमरा खोलने के लिए रमण ने ज्यों ही चाबी निकाल कर लाइट जलाई, मीरा को कमरे के बाहर के बरामदे के एक कोने में सिमटी बैठे सिमकते हुए पाया। ●●●

निश्च स्वीकार किए जा रहे है ? वह क्यो नही कहती—उप लस्सी या मिल्कशेक नहीं पीना और रिना की तरह वटर को बुलाकर क्या वह स्वय थोरे ज स्क्वश या पाइनएपल का आडर नही दती ? फमकफे साहित्य, कला अथवा सगीत के विषय क हर गलत या गलत लगने वाले प्वाइंट पर आने वाला उसका यक्तिगत विरोध आज क्यो सक्रिय नहीं है जिसके कारण कमल न उस सदा चाहा है। अपने पारस्परिक सम्बधो के पिछले चार सालो क हर दिन की याद उसके मन और मस्तिष्क मे आज भी एकदम ताजा है। अपनी तरफ स कविता आज कुछ भी नही बोल रही थी। उसकी ऐसी अ तमु खता और गम्भीरता का अथ समझने के लिए इधर उधर क सारे कारण कमल जोडने की कोशिश कर रहा था।

जब दोनो खा पी चुके तो काउण्टर के नजदीक आकर कविता ने अपना वेनिटी बग खोलकर उसम स पस निकाला। जब कमल ने कहा—'कविता तुम नही मै प करूगा। तो 'अच्छा' कहकर वह अत्यधिक सहज भाव स बाहर की तरफ सरक आई थी।

कविता के इस अच्छा से कमल का रगा सगा धय भी उसम से जाता रहा। वह कफे स बाहर आकर कुछ क्षणो तक इस बात की प्रतीक्षा मे रहा कि कविता स्वय ही अपन लिए कोई रिक्शा ठीक करले और चली आय मगर जब फुटपाथ तक आकर कविता न कफे के प्रवेशद्वार की ओर मुह किया तो कमल भी उसके पास तक आ गया।

कविता'—कमल ने कुछ पूछना चाहा था, मगर तभी एक रिक्शे वाल ने आकर उन्हें विस्टव कर लिया था। कमल ने रिक्शे वाले को नही कहकर टाल दिया था और दोना बिना कुछ तय कि ही विलिंगडन रोड से बनाक टावर की तरफ निकल आये थे

हो गई हो। उसकी मुद्रा देखकर कमल को लगा जसे वह अभी अभी
ही धाड मारकर रो पडेगी। जब कमल ने उसके निकट जाकर अपने
हाथ से बाधकर उसे उठाया तो एक अत्यधिक सयत और निर्णयात्मक
स्वर में वह बोली— मेरे अकल और आण्टी अपने किसी पुराने कज
के लिए मुझे चार हजार म उस गू सट का बेच रहे हैं। शायद उन पर
कुरकी आ रही है। कमल ! आज रात को क्या तुम मुझे बाहर
ले चलोगे यहा से ?"

कमल के मन म क्षण मात्र के लिए एक बिजली सी कौंधी
और तब सहसा एकदम बाद ही उसके अन्दर से कहीं जस कोई फ्यूज
सा उड गया। कविता की इतनी देर की अन्यमनस्क स्थिति का कारण
कमल को अब समझ में आ गया था। इस बात का कारण समझने में
भी कमल का अधिक समय नहीं लगा कि आज स्वय कविता ही ने
अपनी तरफ स चलाकर उससे कुछ दर का समय फोन पर लिया
था। उन दुरूह क्षणो म कमल ने चाहा सच ही व दोनों एकदम
उडकर कहीं दूर बहुत दूर चल जाते—मगर कहा ? उसने कई दूसरे
विकल्प भी सोचने चाहे कविता की इस समस्या क, मगर उसके दिमाग
में तो जस नीला भर गया था। चार हजार की रकम भी तो कोई
छोटी रकम नहीं थी। तब उसे धीरे धीरे एक एक करके कुछ ऊट-
पटाग विचार भी आए। कुछ देर का उसे अपने होस्टल के रिंगलीडर
रघुवीर का भी ध्यान हुआ जो कविता के नाम पर जान देता था
और जिसने कभी कमल को कविता के मन्वास का अवसर दिला देने
के लिए कोई भी रकम देने की बात कमल स कही थी। कमल
तब नाहक ही उस पर उबल पडा था और सारे कॉलेज में एक हगामा
सा मच गया था। कमल को लगा जसे अन्दर और बाहर से वह
एकदम खाली हो गया है।

आज बहुत दिनों बाद किशन राधा के सोने के कमरे में आया था और उसके साथ आई थी उसकी राधा के लिए ढेर सारी भेंटें। जिनमें साड़ियाँ थीं ब्लाउज पिन थे आज शृंगार का सामान था और इन सब के अतिरिक्त सोने के कुछ आभूषण भी थे। पुखराज की एक अंगूठी सुर्ख मोतियों का एक जड़ाऊ हार और कानों के बुन्दे। सभी चीजों में जो ऊपर से दिखने वाली एक सामान्य बात थी वह थी लाल रंग की प्रधानता। वह लाल रंग शायद किशन के मन में बसे राधा के प्रति प्रेम का सूचक था जो इतने दिनों बाद आज इस तरह प्रगट हुआ था।

उस रात राधा फिर किशन की होकर रही। हरिकान्त का विचार उसके लिये जैसे मुर्दा होकर रह गया था। और उसका किशन अभी अभी कुछ घन्टों पूर्व ही उस जैसे कोसों दूर दफ्नाकर आया था। किशन की प्रसन्नता थी उसकी राधा उसे इतना अधिक चाहती थी।

मगर हर रात के बाद एक सुबह भी आती है। और वही सुबह जब दूसरे दिन भी आई तो राधा फिर शरीर की कसमसाहट ऐंठन मन की दुर्भावना और वही पुराना पट का दर्द लेकर उठी जो हमेशा उसे हरिकान्त की याद दिलाया करता था। उसे रात की बातें याद कर कर के एक ओर पश्चाताप हो रहा था कि क्यों कल उसने फिर किशन को अपनी वह रात दी कि क्यों कल रात उसने फिर दो खूनों में एक तीसरा विदेशी खून मिल जाने दिया। और वह घन्टों सुबक सुबक कर रोती रही अपने हरिकान्त को याद करती रही।

और फिर उसी याद में आगे के पांच महीने भी बीत गये। अब तक राधा का शरीर बहुत ज्यादा बदशक्ल होकर इधर उधर फैल गया था। उसने हरिकान्त को इसी बीच में पांच ■ पत्र और भी लिख ये जिनका जवाब उसे मिला नहीं था। शायद वह वहां से बदली होकर

कहीं और चला गया था या फिर उसने दिल्ली में ही कहीं शादी करली थी। राधा ने यह भी सोचा था—शायद अब हरिकान्त उसे भूल गया है।

मगर राधा तो तब भी हरिकान्त को भूली नहीं थी। उस दिन अप्रल की ९ तारीख को राधा का पेट दर्द इस कदर बढ़ा कि राधा को लगा जैसे उसकी जान लेकर ही जायगा लेकिन उस रात राधा के उस दर्द ने उसकी जान लेने की बजाये उसे एक और नई जान दी थी राधा के लड़का हुआ था, और किशन उसका बाप बन गया था।

पुत्र जन्म की खुशी घर में कई दिनों तक एक सी रही और जब लड़के की छठी हुई तो सभी लोगों ने राधा और किशन को बधाइयां दी। किशन और राधा के भाग्य को सराहा उनके सुखी दाम्पत्य जीवन की मगल कामनाएं की। सबने कहा किशन के लड़के की सूरत कितनी अच्छी थी लकिन घर में और उसके परिवार में वह किसी से भी नहीं मिलती थी। लेकिन इस सब से क्या आता जाता था जो गाता या किशन को प्रभावित करता। किशन राधा की सूरत को आनन्द [illegible] और राधा किशन के इस नव जात शिशु की सूरत को जिसे अपने [illegible] में ९ माह तक एक अजीब दर्द के अलौकिक सुख से रस [illegible] हुए राधा ने जन्म दिया था। वह अपने प्यार की इस [illegible] मुखड़ा देख कर निहाल थी उसे देख कर राधा को जो [illegible] अजीबोगरीब सुकून मिलता था वह संसार की दूसरी [illegible] उपलब्ध था? शायद नहीं था। लेकिन उसका [illegible] केवल एक ही बात सोच रही थी कि कब राधा अपने [illegible] मिल पायगी, जो आज उससे बहुत दूर है जो उसकी [illegible] जबाब नहीं देता है और जो शायद उसे भूल [illegible] है। [illegible] अपनी स्थिति की तुलना दुष्यन्त के विरह में [illegible]

किसी शकुन्तला की स्थिति से कर रही था। राधा इस बात के लिये बहुत अधिक लालायित थी कि शारीरिक रूप से सामान्य होकर वह जल्दी ही चलने फिरने योग्य हो जाय ताकि दिल्ली पहुँच कर वह अपने हरिकान्त से मिले और अपने और उसके प्रेम की यह भेंट उसे दिखाये। राधा के मन में हरिकान्त के प्रति जो अनुराग है उसका इस समय में अधिक स्वस्थ प्रमाण और क्या हो सकता है। उसने सोचा हरिकान्त उसको देख कर कितना खुश होगा उसे अपनी बाहों में भर लेगा। उसे फिर साल भर के लिये भूली हुई वह राधा याद आ जायगी जिसके साथ उसने दिल्ली का कोना कोना घूम लिया था। प्रकृति के गर्म और ठण्डे नम और शुष्क वातावरण में वे सैकड़ो कोस इधर उधर सफरीह में भटके हैं। उसे बार बार वह हरिकान्त याद आ रहा था जिसने पिछले तीन साल पूर्व कन्वोकेशन के एक दिन राधा से बिछुड़ते हुए कहा था— राधा मैं तुम्हें चाहता हूँ। तुम मुझे प्राप्त हो सके इसके लिये मैं जिन्दगी भर तुम्हारा इन्तजार कर लूँगा। और ऐसे ही विचारों में वह घन्टों बँधी रहती। अपने शिशु अजय को देखती तो फिर उसे फिर फिर कर हरिकान्त याद आता। वही नाक नक्श वही आँखें और हूबहू वैसा ही ललाट उन्नत और प्रकाशवान। आत्मविस्मृति के ऐसे ये घन्टे दिन बन कर दो मास भी हो गये।

दिल्ली आकर राधा ने जब तक नहाना धोना खाना पीना किया शाम हो चुकी थी। वह बाहर जाने के लिए तयार होने लगी। शीशे में देखते अपने बिम्ब में अपने सौन्दर्य और यौवन की ताजगी को क्षण भर के लिए देखती ही रही। तब अजय को लेकर बाहर निकली और हरिकान्त के घर के लिये रवाना होगई। रास्ते भर वह अपने अन्दर स्नायु दौर्बल्य की सी कोई प्रतिक्रिया अनुभव कर रही थी। रिक्शा तेज दौड़ता था तब भी राधा के ललाट पर पसीने की बूँदें थीं। हरिकान्त

के घर पहुँच कर घंटी बजा कर अपने बाहर होने की सूचना जब उसने दी तो दरवाजा खुला। सामने कोई नवयुवती थी—प्रश्न सूचक दृष्टि से बाहर खड़ी राधा को देख रही थी। हरिकान्त के स्थान पर उसके कमरे में एक नवयुवती को पाकर राधा के मन का सारा उत्साह जाता रहा। वह लौटना चाहती थी बिना कुछ कहे सुने ही मगर अब उस नवयुवती ने अपनी जिज्ञासु दृष्टि को शब्द दिये-आप किससे मिलना चाहती हैं। तो राधा ने हरिकान्त के विषय में पूछा। नवयुवती अन्दर गयी और बाहर आकर एक परचा देते हुये राधा से बोली—"६ ७ महीने हो गये उन्होंने मकान बदल लिया है। वे अब विनय नगर में रहने लगे हैं।

— अच्छा' कहकर राधा लौट आयी और बाहर सड़क पर कुछ दूर चल कर उसने विनय नगर के लिए एक स्कूटर फिर ले लिया। आज पहाड़गंज से विनयनगर कितनी दूर हो गया था—राधा को लगा। स्कूटर में बैठी वह सोच रही थी ये छोटी छोटी सी रुकावटें उसे क्यों आ रही हैं। क्या उसे दुस्वप्न हो गया है या फिर पेट की वह गड़बड़ वर्तमान स्थिति से पैदा हुए उसके स्नायुदौर्बल्य में थी।

स्कूटर वाले को हरिकान्त के पते का परचा उसने दे दिया था। वह शायद वह स्थान जानता था इसलिए पते का पता करने के लिए उसने राधा से 'अच्छा' के अलावा और कुछ नहीं कहा था। गन्तव्य पर पहुँच कर राधा ने स्कूटर वाले को पैसे दिये और उस फ्लैट का बरामदा पार कर एक कमरे के बाहर लगी नाम की तख्ती को पढ़ा डा० हरिकान्त एम ए। वह दरवाजे के दाहिनी तरफ से लगी घंटी बजा कर एक तरफ खड़ी हो गयी। स्कूटर में हवा लगने से संजय उसकी गोद में सो गया था। संजय को यों सोता देखकर उसे उस पर प्यार आया और उसने उसे चूम लिया, उसे फिर हरिकान्त याद आ रहा था

ग्यारह

पिछली बार जून में मिला था अपनी रश्मि बहिनजी से तब काफी साफ सुथरा था उनका कमरा। फर्श अच्छा सीमेंट किया हुआ, खूँटी पर दो साड़ियाँ एकदम साफ पलंग पर एक बढ़िया चादर जिसके चारों कोनों पर कसीदाकारी का थोड़ा सा किन्तु अद्भुत कौशल सामने एक आले पर कुछ पुस्तकें रखी हुई— छोटी कक्षाओं, कुछ कापियाँ भी दूसरे में एक सरस्वती का चित्र कालगेट का केन तेल और बाजू बाजू दो चित्र—एक उन्हीं का एक मेरी सगी बहिन करुणा का।

गया तो स्कूल जाने की तैयारी में थीं मगर मेरे पहुँचते ही स्कूल से छुट्टी की एक दिन की दरख्वास्त भिजवा दी और बोलीं— "कब आये जयपुर से ?" मैंने कहा— "आज ही अभी।"

"अच्छा! मैंने छुट्टी ले ली है स्कूल की। यहीं नहा धोकर खाना पीना है।"

और तब बिना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये ही स्टोव जलाने में लग गई थी। यह जानते हुए भी कि यहां आकर मैं अपनी नानी के यहां ठहरा हूं और नहाने धोने पहनने आदि का सारा सामान मेरा वहीं है। मगर मैं जब तक यह कुछ सुनकर प्रतिवाद के लिए तैयार हो पाता उन्होंने मेरे लिए गरम पानी नहाने के लिए तैयार कर लिया था और अपनी ट्रंक मे से एक उजला धुला हुआ तौलिया निकाल कर मेरे सामने खड़ी हुई थी। बोली— अरे अभी तक यहीं खड़े हो। जाओ, बाथरूम में जाकर नहा धो लो। फिर बात करूंगी तुमसे। करुणा की, तुम्हारे जयपुर की।'

मैंने तब भी जब बोलने की कुछ कोशिश की तो वे पहले ही बोल पड़ी— मैं तुम सबका स्वभाव अच्छी तरह से जानती हूं, एक से एक बढ़ चढ़ कर हो। तुम पांचों के पांचों भाई ही ऐसे हो। मैं तो जब भी तुम्हारे यहां आती हूं जबरदस्ती ठूंस ठूंस कर खिला पिला देते हो। क्यों भला ?'

रश्मि बहिनजी एक स्कूल में अध्यापिका थी। दस साल पहले जब मेरी बहिन ने हिन्दी की एक परीक्षा दी थी तभी से इनका और उनका परिचय था। और फिर तो बस दांत कटी रोटी ही हो गई थी—एक सा पहनाव, एक सा खाना पीना और घर छोड़ कर दोनों का रात दिन एक साथ रहना।

आज जब उनसे मिला तो कुछ और ही बात हो गई थी। तीन ही साल से एकदम इतना अन्तर! पिछले साल से जब मेरी नौकरी यहां हो गई है उसी दौरान में जब कानों में भनक पड़ी थी कि रश्मि ने दूसरी शादी करली है लगभग पन्द्रह बीस वर्षों का वयस्य

धार पौधे अव्यवस्थित रूप में स्वत ही बढ रहे थे जसे वायव्य ईशान एक डोरी तार की बधी थी जिसमें कुछ कपडे सूख रहे थ—जनाना भी, मरदाना भी । मुझे कपडो को देख कर रश्मि बहिनजी का जून का देखा हुआ वह पुराना कमरा याद आ रहा था जिसमे सफाई और सफाई क अतिरिक्त जसे और कुछ था ही नहीं । साडियाँ एकदम साफ सूखी मगर यहाँ य धुले हुए कपड़े भी इतने साफ नहीं दिख रह थ । एक बनियान एक अण्डरवीयर एक प ट, एक कमीज—सब मर्दाना और उनक अपने कपडो के नाम पर महज एक साडी और चोली ।

—मैंने क्षणिक रुक कर सोचा—तो, अब रश्मि बहिनजी का अपनापन गया । —गया नहीं बढ गया सकुचित था पहल अपने तक अब बढ गया एक अपने और तक भी ।

चुपचाप अन्दर ले गई तो कुछ अजीब सा लगा । जून वाल उनके कमरे की सफाई का एक अंश भी यहा था नहीं । चारो तरफ मक्खियाँ भिनकी हुई । कपडे अव्यवस्थित एक कमरे को दो बनान क लिए बीच म लगाए पर्दे के नीचे का किनारा भी गन्दगी का हाथ पोछा हुआ होने के कारण मला था । एक टेबिल पर जिस एक मल सफेद चादर से ढका हुआ था एक रेडियो सेट पडा था । रडियो सेट की बगल म एक टबल लम्प । मेरी कुर्सी के पास ही मेज पर वहीं ही रडियो क पास एक छोटी वैनिटी बैग पडी थी जिसम आदमी क हाथ स अग्रजी मे लिखा हुआ था "श्रीमती रश्मि देवी गुप्ता ।' वे आजकल गुप्ता हो गई थी ।

नही चाहता था कि व मरी वस्तुओ को इस गहराई स दखने वाली बात को ताड जाय मगर तब भी वे ताड गई । बोली—'अजीब अजीब सा लग रहा है न तुम्हे यहा आकर "— फिर

एक ठंडी साँस भर ऐसे बोली जैसे मुझे एक अतिथि के रूप में ग्रहण करने का उनका सारा उत्साह समाप्त हो गया हो— हाँ, लगना ही चाहिए।'

मुझे अफसोस तो हुआ अपनी इस मजबूरी का मगर क्या करता? तब भी कुछ तो कहता ही। बोला— नहीं तो ऐसी क्या बात है? तब वे अन्दर चली गईं। मैं देखता रहा—रेडियो के पास वाले छोटे आले को जिसमें कई दवाइयों की शीशियाँ रक्खी थीं कार्नेट के तेल की भी एक शीशी, जिसमें बाहर की तरफ तेल लगा था। और बच्चों के खिलौने। हाँ बच्चे वाली बात मुझे तब याद आई। मैं अन्दर चला गया तो बच्चे को अच्छी तरह से कर रही थीं। लेटे लेटे ही उसने टट्टी करके सारे कपड़े भर लिए थे। बोली—"देखो न कितना गन्दा है! क्या बताऊँ दिन रात तंग करता है, जरा भी चैन नहीं लेने देता। अभी तो बीमार है न। वे दवा लेने गए हैं इसकी। आते ही होंगे?

तब काफी देर तक जयपुर की, मेरी करुणा दी की बातें वे करती रहीं। बताया—जयपुर उन्होंने करुणा दी को दो तीन पत्र भी दिए थे मगर वो तो आज कल मुझसे घृणा करने लगी है। पत्र का जवाब देना तो दूर, यहाँ आई थी कुछ दिनों पहले तब भी मिली नहीं थी।

लेकिन मैंने अपनी बहिन के सम्बन्ध में की गई बातों की सफाई हर तरह से देने की कोशिश की। काफी प्रयत्न किया उनको यह समझाने का कि उन्होंने जो कुछ किया है अच्छा ही किया है—इसमें घृणा करने जैसी तो कोई बात हुई ही नहीं। तब भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ, मेरी बात को अभिप्राय में लेने का। बातें करते करते ही

बच्चों को सुला कर हलुवा बनाने में लग गईं। मैंने जब वैसे ही निरी औपचारिकतावश ही कह दिया कि मैं तो अभी खा पीकर ही आया हूँ—कुछ भी नहीं खाऊँगा तो जाने क्यों खफा हो गईं। शायद उन्हें बहुत बुरा लगा था। इसलिए वे दूर ही अन्दर रोने सी लगीं दूसरी तरफ मुँह छिपाकर। लेकिन बाद में मुझे भी ऐसी औपचारिकता दिखाने का काफी पश्चात्ताप हुआ था।

उनके श्रीमान् जी आए और मैं उनसे भी थोड़ी सी बात करके हलुवा खाकर चला आया—रास्ते भर अपनी सामाजिक कमजोरी हमारी अनुदार मान्यताओं इन सबको धिक्कार—अपनी उस बहिन जी के बारे में सोचता हुआ चला आया जिन्होंने अपने स्वयं के जीवन सुधार के लिए समाज की कुछ रूढ़ मान्यताओं में सड़न की कोशिश की थी। समाज के अन्य लोगों पर जिसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था उनकी इस छोटी सी बात पर फिर उनके मां बाप ने भी हमेशा के लिए सम्बन्ध तोड़ लिए थे। किसी का बाप जिन्होंने मारा नहीं था, किसी को बुरा भला कहा नहीं था तब भी किसी ने उन्हें सहानुभूति नहीं दी। उनके अपने जीवन के सम्बन्ध में किए गए उनके साहस को किसी ने सराहा नहीं।